वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ८९ अंक ११
नवम्बर २०२१

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

नवम्बर २०२१; कार्तिक, सम्वत् २०७८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक ११

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

१. काली स्तोत्र	४८५
२. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित)	४८५
३. सम्पादकीय : माँ काली के परिप्रेक्ष्य में दिवाली विमर्श	४८६
४. जहाँ दया तहँ धर्म है (विजय कुमार श्रीवास्तव)	४८७
५. बच्चों के आदर्श ध्रुव और प्रह्लाद (गीता दीदी)	४८८
६. आध्यात्मिक जिज्ञासा (७१) (स्वामी भूतेशानन्द)	४९१
७. (बच्चों का आँगन) क्या पेड़-पौधे भी सोते हैं? (स्वामी गुणदानन्द)	४९३
८. नर्मदाष्टकम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा), मायापति को भूल गया क्यों ! (भानुदत्त त्रिपाठी, मधुरेश)	४९४
९. श्रीरामकृष्ण-गीता (५) (स्वामी पूर्णानन्द)	४९५
१०. रामराज्य का स्वरूप (४/२) (पं. रामकिंकर उपाध्याय)	४९६
११. माँ काली और मृत्यु से डरें नहीं (डॉ. रेखा अग्रवाल)	५००
१२. प्रश्नोपनिषद् (१८) (श्रीशंकराचार्य)	५०२
१३. रामकृष्ण मिशन फ्रांस और जर्मनी की यात्रा (डॉ. गोपेश द्विवेदी)	५०३
१४. (युवा प्रांगण) विकास और समृद्धि का स्रोत : शुभ संकल्प (सीताराम गुप्ता)	५०७
१५. सारगाछी की स्मृतियाँ (१०९) (स्वामी सुहितानन्द)	५०८

ISSN 2582-0656

१६. रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर की सौ वर्ष की यात्रा : एक ऐतिहासिक अवलोकन (स्वामी आत्मश्रद्धानन्द) ५११
१७. वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (४) (स्वामी ब्रह्मेशानन्द) ५१५
१८. (कविता) आदिशक्ति मेरी माँ काली (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५१६
१९. गीतातत्त्व-चिन्तन – (५) (दशम अध्याय) (स्वामी आत्मानन्द) ५१७
२०. सर्वधर्म समभाव के प्रतीक : विनोबा (डॉ. एस. एन. सुब्बा राव) ५१९
२१. पाषाण हृदय को पिघलाने की शक्ति है : विनोबा विचार (अजय पाण्डेय) ५२०
२२. क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५२१
२३. साधुओं के पावन प्रसंग (३५) (स्वामी चेतनानन्द) ५२४
२४. समाचार और सूचनाएँ ५२७

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) **विवेक ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमितता के कारण कई बार पत्रिका नहीं मिलती है। अतः पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक-विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे अनेक सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है।** पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। **अंक उपलब्ध रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।**

(४) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ में प्रकाशित मन्दिर रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर का है। विशेष जानकारी हेतु इसी अंक के पृष्ठ संख्या ५११ में प्रकाशित लेख को पढ़े।

नवम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

१६	स्वामी सुबोधानन्द
१८	स्वामी विज्ञानानन्द
०४	श्रीश्रीकाली पूजा, श्रीलक्ष्मी पूजा
१,१५,३०	एकादशी

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६६८.	श्री अशुतोष तिवारी बैंगलोर (कर्नाटक)	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, शेरगाँव (अरुणाचल प्रदेश)
६६९.	,, ,,	लाईब्रेरी, विवेकानन्द केन्द्र विद्यालय, सुनपुरा (लोहित) (अ.प्र.)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

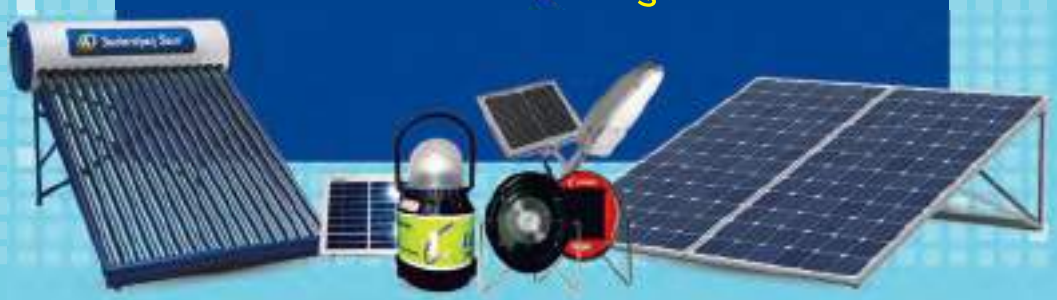

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

SMS: **SOLAR to 58888**

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com

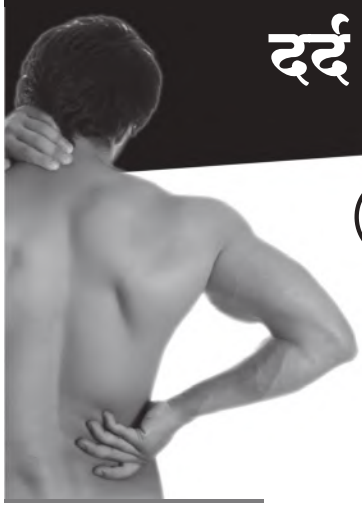

आयुर्कवच
बैद्यनाथ
असली आयुर्वेद
खाइए 365 दिन
शुगरफ्री इम्युनिटी
च्यवन-फिट
शुगरफ्री*
च्यवनप्राश
Baidyanath
ASLI AYURVED
CHYAWAN-FIT
SUGARFREE*
SUPER IMMUNITY
RAKHE TANDURUST... RAKHE FIT
Baidyanath
ASLI AYURVED
Chyawanprash
Special
Ayur Kavach
SUPER IMMUNITY
डायबिटीक्स को बीमारियों से बचाने में उपयोगी
मधु (हनी) रहित
रखे तन्दुरूस्त...रखे फिट...
दर्द अनेक...दवा एक...
बैद्यनाथ
असली आयुर्वेद
रूमार्थो टॅबलेट
रूमा ऑईल
न कोई चिपचिपाहट...
ना कोई दाग लगने का डर...
रूमा ऑईलः लगाते ही आराम पायें।
•जोड़ों का दर्द
•कमर दर्द
•कंधों का दर्द
•घुटनों का दर्द
Baidyanath
ASLI AYURVED
RHEUMARTHO
TABLET
Fortified with Salai Guggulu
For the Easy Movement of Joints
New Improved Formula
Baidyanath
ASLI AYURVED
RHUMA
OIL
Fortified With Gandhapuri Tel
For Muscle And Joints Pain
वैद्यकीय सलाह : 844 844 4935 I www.baidyanath.co

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५९ नवम्बर २०२१ अंक ११

काली स्तोत्र

वशे यस्याः कालः कलयति विधातव्यसकलं
सुराणां भक्तानां निखिलविपदः वारयति या।
त्रिलोके निश्चिन्ताः प्रणतहृदया देवमनुजा
महाकालीं वन्दे करुणजलधिं मातरमहम्।।

– समस्त विधान का सम्पादक काल जिसके वशीभूत है, जो देवताओं और भक्तों की विपदाओं का निवारण करती हैं, जिनके कारण प्रणत हृदयवाले देवता और मनुष्य तीनों लोकों में निश्चिन्त रहते हैं, उस करुण-सागर माता महाकाली की मैं वन्दना करता हूँ।

करे खड्गं तीक्ष्णं रिपुदलनरक्तार्द्रभयदं
शिरोमाल्यं कण्ठे निहतदनुजानां विरचितम्।
महादेवस्योरःस्थलसरसिजारूढ़चरणा
बहिर्जिह्वाग्रां तां सुतशरणदात्रीमनुभजे।।

– जिसके हाथ में शत्रुदलन करने से रक्त से भींगा भयकारी धारदार खड्ग है, गले में मारे गये दैत्यों से निर्मित मुण्डों की माला है, महादेव शिव के वक्षस्थल रूपी कमल पर जिनके चरण आरूढ़ हैं और जिह्वाग्र बाहर निकली हुई है, उन पुत्रों की शरणदायिनी की मैं अर्चना करता हूँ।

पुरखों की थाती

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः।।७४०।।

– निर्धन लोग धन की कामना करते हैं, चौपाये पशु लोग बोलने की क्षमता पाना चाहते हैं, मनुष्य लोग स्वर्ग की इच्छा करते हैं और स्वर्ग के देवता लोग मोक्ष-पाने की इच्छा करते हैं।

अनवस्थितकायस्य न जने न वने सुखम्।
जनो दहति संसर्गाद् वनं संगविवर्जनात् ।।७४१।।

– अस्थिर या चंचल चित्तवाले व्यक्ति को न तो लोगों के साथ रहने में और न ही वन के एकान्त-वास में सुख मिलता है। लोगों का संग उसे (ईर्ष्या से) जलाता है और और वन के भीतर उसे अकेलापन काटता है।

अनर्घमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते।
विनाश्रयं न शोभन्ते पण्डिता वनिता लताः।।७४२।।

– एक मूल्यवान मणि को भी (शोभा पाने के लिये) स्वर्ण की जरूरत पड़ती है, वैसे ही विद्वान् लोग, नारियाँ तथा लताएँ बिना किसी बाह्य आश्रय के शोभित नहीं होते।

माँ काली के परिप्रेक्ष्य में दिवाली विमर्श

कार्तिक मास की अमावस्या को दीपावली का महोत्सव आयोजित होता है। जागतिक स्तर पर एक ओर अमावस की रात्रि रूपी घोर अन्धकार विजय प्राप्ति हेतु चारों ओर दीप-प्रज्वलन की सेना सजायी जाती है, तो दूसरी ओर आध्यात्मिक अज्ञानान्धकार की निवृत्ति हेतु दैवी शक्ति की आराधना भी हमारी संस्कृति में प्राचीन काल से प्रचलित है। अज्ञानान्धकारनिवृत्ति हेतु महालक्ष्मीजी और महाकाली की पूजा का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। दोनों मातृशक्तियाँ तत्त्वत: एक होते हुए भी इस अवसर पर काल-अधिष्ठात्री माता महाकाली की उपासना में निहित भाव संक्षेपत: विवेच्य है। वास्तव में दीपावली तो घोर काल-रात्रि अमावस्या में ही मनाई जाती है, तभी उसकी शोभा और उपयोगिता है। प्रखर सूर्य में दीपावली की न शोभा होती है, न आवश्यकता। अप्रयोजनीय असुन्दर के प्रति किसी का न आकर्षण होता है, न उससे प्रसन्नता होती है। लेकिन दीपावली की रात्रि में दीप जलाकर, दीपोत्सव मनाते समय उस स्वर्णिम भव्य प्रकाश में रंग-बिरंगे विविध प्रकार के पटाखों के प्रकाश और ध्वनि का आनन्द सहस्त्रों गुणा अधिक हो जाता है, मन-मयूर नृत्य करने लगता है, आबालवृद्ध सभी प्रसन्न हो जाते हैं।

वास्तव में यह प्रकाश और प्रसन्नता श्याम वर्णमयी माँ काली के शरीर से निकलने वाली दिव्य-ज्योति-प्रभा की अभिव्यक्ति है और प्रसन्नता, आनन्द भी उनके आनन्दमयी स्वरूप की है। जब जीवन के निराशा रूपी घोर अन्धकार में व्यक्ति दिग्भ्रमित होकर दुखित हो जाता है, तब माँ काली अपने दिव्य ज्ञान-प्रकाश से उसका मार्ग-दर्शन करती हैं और सत्पथ पर चलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है।

माँ काली के श्याम विग्रह से चन्द्रमा की कोटि प्रभा विकिरित होती रहती है। श्रीशंकराचार्य जी श्रीकालिकाष्टकम् में '**महामेघ काली सुरक्ताऽिप शुभ्रा**' और **'चिदानन्दकन्दं हसन् मन्दं मन्दं।शरच्चन्द्रकोटिप्रभापुंञ्ज-बिम्बम्।।'** लिखते हैं। अर्थात् – माँ तुम घोर मेघवर्णवाली काली हो। मृदु मधुर-मधुर मुस्कुराती रहती हो। तेरे तन से शरच्चन्द्र जैसा कोटि प्रभापुंज सदा निकलता रहता। हे माँ ! तेरे इस स्वरूप को देवता भी नहीं जानते।

त्रैलोक्य नाथ सान्याल ने अपने बंगला गीत में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है – माँ ! घोर अन्धकार में तेरा सुन्दर रूप चमक रहा है। इसीलिये योगी पर्वतों की गुफाओं में बैठकर तेरा ध्यान करते हैं –

निबिड़ आँधारे मा तोर चमके अरूप राशि।
ताई योगी ध्यान धरे होए् गिरि गुहाबासी।।

रामप्रसन्न बन्द्योपाध्याय ने माँ के रणचण्डी रूप में भी भव्यता का वर्णन किया है –

समरे नाचे रे कार ए् रमणी। नाशिछे तिमिरे तिमिर वरणी। ... चमके दमके जेनो रे दामिनी।।

रणभूमि में वह कौन सी रमणी नृत्य कर रही है। वह तिमिरवर्णी होकर भी तिमिर का नाश कर रही है। वह हुंकार करती हुई ताण्डव में मग्न है और दामिनी जैसी चमकती-कड़कती है।

भक्तों ने विभिन्न रूपों में माँ काली की भावना की है। कभी काली, कभी पीली, कभी नीली और कभी कोई रूप नहीं। लेकिन जन-मानस में काली का मुंडमाला श्याम वर्ण ही प्रथित है। लेकिन वह काला रूप सारे जगत को और भक्त हृदय-कमल को प्रकाशित करता है – **कालो रूप दिगम्बरी हृदिपद्म करे आलो रे।** ऐसी है माँ काली के काले वर्ण की महिमा, जो दीपावली के महानिशा में निखर उठती है।

माँ अपने पुत्रों की रक्षा हेतु परिस्थिति या काल-पात्रानुसार रूप धारण करती हैं। जिस प्रकार माँ ने देवारि दैत्यों का वध किया, उसी प्रकार जब साधक को काम-क्रोध, लोभ-मोह रूपी महिषासुर, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ दैत्य और आधि-व्याधि-दरिद्रता रूपी पिशाचिनी सताने लगे, तो उसे माँ काली से आर्त्तभाव से प्रार्थना करनी चाहिए। तब माँ तत्क्षण हृदय में प्रकट होकर अपने प्रिय तनय की इन दुष्टों से रक्षा करेंगी। जब माँ हृदय में प्रकट होकर शत्रु-वध कर देंगी, तब हृदय में ज्ञान-प्रकाश हो जायेगा, भक्त आनन्दित होकर नृत्य करने लगेगा, माँ के गुण, उनकी महिमा गाने लगेगा, तभी सच्ची दिवाली मनेगी। ○○○

जहाँ दया तहँ धर्म है

विजय कुमार श्रीवास्तव

क्षुधा से पीड़ित, दीन, असहाय और संकट में फँसे जीवों की सहानुभूतिपूर्वक नि:स्वार्थ सेवा-सहायता करने की प्रवृत्ति प्राय: उच्च जीवन मूल्यों के अन्तर्गत पुण्य प्रसून सेवाओं में आती है। दूसरे की पीड़ा को अपने हृदय में अनुभव करके जब हम नि:स्वार्थ और त्याग भाव से शरीर, मन अथवा अर्थ से उदारतापूर्वक उसकी सेवा करते हैं, तो इस प्रवृत्ति में उपजे भाव को 'दया' के नाम से जाना जाता है। वास्तव में यह हमारे धार्मिक होने की एक मूल प्रवृत्ति है। इसीलिए कहा गया है —

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ धर्म तहँ आप।
जाके हिरदय है दया, उसे न व्यापै पाप।।

हमारे लौकिक जीवन में दया का अत्यधिक महत्त्व है। व्यक्ति का दयालु होना उसकी आत्मा की पावनता का द्योतक है। इससे इस विशाल प्राणी-जगत में पारस्परिक सहानुभूति और जीव-सेवा की एक शालीन भावना का विकास होता है। जीवों के प्रति सद्भावना, प्रेम, करुणा, परोपकार, दान और नि:स्वार्थ सेवा के मानवीय दायित्व का निर्वाह प्राय: हृदय में विकसित दया के आर्द्र प्रभाव से ही प्रकट होता है। दूसरे के कष्ट को अपने हृदय की चेतना से अनुभव करते हुए उसकी कुछ सेवा-सहायता करके अपने को कृतार्थ करना वास्तव में ही मानवीयता है। बाढ़ पीड़ितों की सहायता, रोगी-उपचार, कुष्ठ-सेवा, निर्धन छात्रों के अध्ययन-पथ की बाधाओं को दूर करना, क्षुधा पीड़ितों को अन्न, प्यासों को जल और नि:शक्त व्यक्तियों तथा वृद्धों की सेवा दया के प्रबल उद्दीपन के फलस्वरूप ही साकार होती है। यदि हमारे अन्दर पीड़ित के प्रति दया के भाव का संवेग न पनपे तो शायद जीव-कल्याण के ये कृत्य पूर्ण ही नहीं हो सकते।

इस पावन धरा पर दयालु व्यक्तियों का किसी भी युग में अभाव नहीं रहा है। बड़े-बड़े अस्पताल और सामाजिक संस्थाओं तक में उनकी स्थापना में मूल विचार प्राणिमात्र के प्रति दया और परोपकार का ही रहा है। तीर्थ स्थानों पर अपंग, वृद्ध तथा कोढ़ियों की सेवा-सहायता, भंडारे, गौशालायें और शीतकाल में रजाई व कम्बलों का वितरण भी दया की अभिप्रेरणा से ही होना पाया जाता है। मानव ही नहीं, पशु-पक्षियों की सेवा भी हमारी उच्च मानव संस्कृति का अंग रही है। आपने छोटी स्कूली कक्षाओं में राजा शिबि की दयाशीलता की कहानी तो पढ़ी अथवा सुनी ही होगी, जिसमें उन्होंने एक सामान्य कबूतर की रक्षा हेतु अपने पूरे शरीर का माँस ही एक बाज पक्षी को दे दिया था। आपने यह भी पढ़ा होगा कि किस प्रकार महर्षि दधीचि ने देवताओं पर दया करते हुए वज्र बनाने हेतु अपनी हड्डियाँ तक दे देने के उद्देश्य से अपने जीवन तक की आहुति दे दी थी। ये दया प्रदर्शित करनेवाले उच्च आदर्शों से प्रेरित प्रसंग हैं।

आप अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में दया की अनेकों मिशालें पा सकते हैं। मैंने स्वयं भी अपने अध्ययन क्रम में ऐसे बहुत-से दृष्टान्त पिरोये हैं। इनमें से दो उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत करना चाहूँगा, जिसमें पहला तो है अब्राहमलिंकन का, जो गणतन्त्र अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति थे। एक समय की बात है, वह एक महत्त्वपूर्ण सभा में स्वयं ही गाड़ी चलाकर जा रहे थे। अचानक उन्होंने किसी प्राणी का आर्तनाद सुना। उन्होंने गाड़ी एक ओर खड़ी करके देखा कि सुअर का बच्चा किसी गड्ढे के दलदल में गिरकर नीचे को धँसता जा रहा है। उन्होंने तत्काल अपनी आस्तीनें चढ़ायी व पैण्ट को नीचे से मोड़कर उसे बचाने के लिए दलदल में उतर गये और स्वयं अपने प्राण और प्रतिष्ठा की चिन्ता किये बिना कुछ ही क्षणों में उस निरीह बच्चे को दलदल से निकालकर किनारे पर रख दिया। दया से द्रवित इस कार्य में उनके सारे कपड़े कीचड़ से लतपथ हो गये। उनके पास समय कम था, यदि कपड़े बदलने के लिये वापस जाते, तो सभा में पहुँचने की देर हो जाती, अत: वे उसी हालत में सभा में जा पहुँचे। वहाँ पर उपस्थित उनके हतप्रभ मित्रों को जब वास्तविक घटना का पता चला, तो सभी ने ही अत्यन्त आदर के साथ उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इसी क्रम में जो मैं दूसरा उदाहरण देना चाहूँगा, वह है महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त एकनाथ का, जब अपनी धार्मिक यात्रा के दौरान उनका दल काँवर में गंगाजल लेकर हरिद्वार से रामेश्वरम् जा रहा था। उन दिनों विजयवाड़ा का चतुर्दिक क्षेत्र तीन वर्षों से भयंकर अकाल से ग्रस्त था। मार्ग में जल के अभाव के कारण कई पशु-पक्षी मृत पड़े थे, धरा तो

शेष भाग पृष्ठ ४९९ पर

बाल-दिवस विशेष

बच्चों के आदर्श ध्रुव और प्रह्लाद

गीता दीदी

ब्रह्मविद्यामन्दिर पवनार, वर्धा, महाराष्ट्र

सालों पुरानी बात है। हमारी एक सह-अध्यापिका बहन कोई आध्यात्मिक ग्रन्थ पढ़ रही थीं, तो उनके पतिदेव नाराज हो गए। बोले, ''तुम अभी से यह क्यों पढ़ रही हो? यह तो बुढ़ापे में पढ़ने की चीज है।''

अभी भागवत पढ़ते-पढ़ते यह बात याद आयी। भागवत में से कुछ 'बटुओं का, किशोरों का थोड़ा-सा परिचय कर लें। बाबा ने अत्र-तत्र उनका उल्लेख भी किया है। अध्यात्म वास्तव में जीवनव्यापी तत्त्व है। उसे उम्र से सीमित नहीं कर सकते।

निश्चल भक्त ध्रुव

राजा उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थीं – सुनीति और सुरुचि। सुनीति का पुत्र था ध्रुव और सुरुचि का पुत्र था उत्तम। राजा को सुरुचि अधिक प्रिय थी। एक दिन उत्तम को गोद में बिठाकर राजा प्यार कर रहे थे। उसी समय छोटे-से ध्रुव ने भी राजा की गोद में बैठना चाहा। अपनी सौत के पुत्र को महाराज की गोद में बैठने का यत्न करते देख सुरुचि ने ईर्ष्यापूर्ण शब्दों में कहा, ''बच्चे, तुझे राजसिंहासन पर (राजा की गोद में) बैठने का अधिकार नहीं है। अगर तुझे वहाँ बैठना है, तो मेरी कोख से जन्म लेना पड़ेगा। उसके लिए तुझे कड़ी तपस्या करनी पड़ेगी।'' पिता चुपचाप यह सब देखते रहे, मुँह से एक शब्द भी नहीं बोले। तब पिता को छोड़ बालक ध्रुव रोता हुआ अपनी माता के पास आया। माता को जब सारी बात पता चली, तब उसकी आँखें भर आयीं। अपने बेटे को फिर भी वह समझाने लगी, ''बेटा! तू दूसरों के लिए किसी प्रकार के अमंगल की कामना मत कर – **मा अमंगलं तात परेषु मंस्था।** अपने चित्त को शुद्ध करके तू अन्य सब चिन्तन छोड़, केवल श्रीहरि का भजन कर। बेटा, श्रीहरि को छोड़कर तेरे दुःख को दूर करनेवाला मुझे तो और कोई दिखायी नहीं देता।'' ध्रुव को माँ की बात ध्यान में आयी। उसके बाद सब कुछ छोड़कर वह तप हेतु निकल पड़ा।

भक्त ध्रुव

जब नारदजी ने ध्रुव की बात सुनी, तो वे ध्रुव को वापस लौटने को समझाने लगे। पर ध्रुव ने बड़ी नम्रता से लेकिन पूरी दृढ़ता से कहा, ''आप तो जगत के कल्याण के लिये तीनों लोक में वीणा बजाते हुए घूमा करते हैं। आप मुझे उसी पद की प्राप्ति का कोई अच्छा-सा मार्ग बतायें, जहाँ मेरे पूर्वज अब तक पहुँचे नहीं हैं।'' नारदजी ध्रुव की सद्भावना और दृढ़ता देख प्रसन्न हुए और उसे जप के लिये द्वादशअक्षरी ध्यान-मंत्र दिया, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'। नारदजी के निर्देशानुसार ध्रुवजी ने यमुनाजी के तट पर 'मधुवन' में जाकर अपना जप-तप शुरू किया। तपस्या दिन-पर-दिन कठोर होती चली। तब इस बालभक्त पर भगवान प्रसन्न हुए। ध्रुवजी को भगवान का दर्शन हुआ।

ध्रुवजी हाथ जोड़े प्रभु के सामने खड़े थे और उनकी स्तुति करना चाहते थे, परन्तु अवाक् हो गये। मुँह से शब्द निकल नहीं रहे थे। तब भगवान ने 'कृपापूर्वक अपने वेदमय शंख से उनके गाल को छुआ।'' शंख का स्पर्श होते ही उनके हृदय की गहराई से वाणी निकली –

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
संजीवयति अखिल शक्तिधरः स्वधाम्ना।

– जिसने मेरे अंदर प्रवेश कर मेरी सोयी हुई वाचा को जागृत किया, ऐसे हे परमात्मन ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस श्लोक के बारे में बाबा का विवरण है – ''प्रसिद्ध कहानी है – ध्रुव तपस्या करता था। बालक था और भगवान का ध्यान आदि करता था। भगवान प्रसन्न हुए। वे उसके सामने खड़े हुए, लेकिन वह तो आँखें बंद करके चिन्तन करता था। उसने देखा नहीं। प्रभु ने शंख से उसके गाल का स्पर्श किया। एकदम उसकी वाणी स्फूर्त हुई – योऽन्तः

प्रविश्य ...। इस तरह मनुष्य जब मन:पूर्वक चिन्तन करता है, तो परम वाक्शक्ति स्फूर्त होती है। उसको पता भी नहीं चलता, वह कहाँ से आयी। वह परमेश्वर के स्पर्श से होती है। इस तरह ईश्वर का स्पर्श जहाँ हुआ, वहाँ साहित्य-शक्ति, काव्य-शक्ति प्रकट हुई।'' भक्त सूरदासजी ने ध्रुवजी की महिमा ऐसे गायी है –

है हरिभजन को परमान ....
चलत तारे सकल मंडल
चलत शशी अरु भान
भक्त ध्रुव को अचल पदवी
राम को दीवान ... है हरिभजन को परमान ...

रात को उत्तर की ओर आकाश में छोटा-सा ध्रुव का तारा टिमटिमाता हुआ दीख पड़ता है। कहते हैं, अथाह सागर के बीच जहाज को दिशा तय करनी हो, तब उत्तर की ओर के इस छोटे-से-ध्रुव के सितारे को देखकर तय करते हैं। ध्रुव का अर्थ ही है स्थिर, निश्चल।

काव्य में – पद्यरचना में एक 'ध्रुवपंक्ति' होती है, जो प्रत्येक कड़ी पूरी होने पर पुन:-पुन: दोहरायी जाती है।

छोटे-से ध्रुवजी वास्तव में जाने-अनजाने इसी तरह हमारे बीच उपस्थित हो जाते हैं।

सामूहिक साधना का आद्य आचार्य प्रह्लाद

संत तुकाराम ने गाया है –

जेर्णे नारायणीं घडे अंतराय
होत बाप-माय वर्जावी ती
प्रह्लादे जनक, विभीषणे बंधु
राज्य-माता निंदु भरते केली

भावार्थ – जो भी कोई भगवद्भक्ति में अंतरायरूप हो, बिघ्नस्वरूप हो, चाहे वह माँ-बाप ही क्यों न हों, उनका त्याग करना चाहिए। प्रह्लाद ने पिता को छोड़ा, विभीषण ने भाई को छोड़ा और भरतजी ने अपनी राजमाता की निंदा की।

भक्त प्रह्लाद

इसमें जिन भक्तों के नाम हैं, उनमें प्रह्लाद सबसे छोटे हैं। श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद की उम्र 'पंचहायन' – पाँच साल की बतायी है। इतनी छोटी उम्र में प्रह्लादजी को भगवद्भक्ति की लगन लग गयी थी। उसके बारे में कबीरजी का एक बहुत मधुर भजन हमने तात्याजी (बालकोबाजी) से सुना था –

''नहीं छोडू रे बाबा रामनाम,
मेरो और पढ़नसों नहीं काम।
प्रह्लाद पढ़ाये पढ़न शाल,
संग सखा बहु लिये बाल,
मोको कहाँ पढ़ावत आलजाल,
मेरी पटिया पै लिख देउ श्री गोपाल ...।''

एक जगह बाबा ने थोड़े में प्रह्लाद के बारे में वर्णन किया है – नृसिंह अवतार में हिरण्यकशिपु को 'संधिकाल' में (संध्या के समय) मारा ऐसी कथा है। 'हिरण्यकशिपु' का अर्थ है, सुवर्ण की उशिका यानी तकिया। अर्थात् वह इतना धनवान था कि सोने की गद्दी पर लेटता और लोटता था। उसने प्रह्लाद को शिक्षा देने के लिए षंड और मर्क ऐसे दो शिक्षक नियुक्त किये थे। षंड यानी बैल (सांड) और मर्क यानी मर्कट, संस्कृत में उसका ऐसा अर्थ है। षंड प्रह्लाद को व्यायाम, कुश्ती लड़ना आदि सिखाता था और मर्क बौद्धिक शिक्षा देता था। लेकिन प्रह्लाद का इतने-से समाधान नहीं होता था। उसको शारीरिक-बौद्धिक के साथ मुख्य तो हृदय की शिक्षा प्राप्त करनी थी। इसलिए उसने भगवन नाम का जप चलाया। पिता ने देखा कि यह तो दूसरा ही पाठ पढ़ रहा है, इसलिए उसने प्रह्लाद को दुख देना शुरू किया। उसका कोई असर न देख पिता ने पूछा, ''तुम्हारा विष्णु कहाँ है?''

प्रह्लाद ने कहा, ''सर्वत्र है।''

पिता ने पूछा, ''वह सर्वत्र है, तो इस खंभे में क्यों नहीं दीखता?''

प्रह्लाद ने कहा, ''खंभे में भी है।''

हिरण्यकशिपु को अचरज हुआ। खंभे में विष्णु उसने सुना नहीं था। उसने खंभे को पदप्रहार किया। खंभे से नृसिंह निकले और उसका वध किया।

इस स्थूल रेखांकन के बाद प्रह्लाद के चरित्र के बारे में थोड़ा देखें। अलग-अलग जगहों पर उस बारे में उल्लेख है। भक्तमाल में भक्ति का मूलमंत्र देनेवालों में प्रह्लाद का नाम पहले आता है और नारद का उसके बाद आता है। बाबा ने इसका कारण

बताते हुए बताया, ''जब भयानक रूप धारण कर नृसिंहावतार प्रकट हुआ, तो भगवान की चिरपरिचित पत्नी लक्ष्मी भी घबरा उठीं और नारद की वीणा, जो कभी क्षणभर भी रुकती न थी, वह भी रुक गयी और वे भी घबरा उठे। परन्तु प्रह्लाद निर्भयता के साथ नृसिंहावतार के सामने खड़ा होकर कहने लगा, **नाहं बिभेमि** – मैं तुमसे नहीं डरता।'' वैसे मनुष्य के दुष्ट रूप के सामने बहुतों ने निर्भयता दिखायी थी – ''व्याध के सामने नारद थोड़ा-सा भी नहीं डिगे। लेकिन भगवान के उग्र रूप के सामने वे भी क्षणभर घबरा ही गये। इसीलिए निर्भयता की कसौटी पर प्रह्लाद खरा उतरा।''

भगवान नृसिंह

नृसिंह भगवान ने प्रह्लाद से वर माँगने को कहा। इस सन्दर्भ में प्रह्लाद का एक अपूर्व श्लोक है। वे कहते हैं –

प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तिकामाः
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्यते।।

(भा.७.९.४४)

– प्राचीन काल में व्यक्तिगत रूप से अपनी मुक्ति की कामना करनेवाले देव और मुनि बहुत हो गये, जो जंगल में जाकर मौन साधना किया करते थे। लेकिन उनमें परार्थ-निष्ठा नहीं थी। मैं इन सब दीनजनों को छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता।

बाबा कहते हैं, ''मुझे अकेले को मोक्ष नहीं चाहिए, इस वचन में कितना अधिक कवि-हृदय है ! इसलिए प्रह्लाद को सामूहिक साधना का आद्य आचार्य माना गया।''

''प्रह्लाद सामूहिक मुक्ति की कल्पना करता है ! नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एकः – इन दीनजनों को छोड़कर मैं अकेला मुक्त होना नहीं चाहता। ... वास्तव में मोक्ष अकेले पाने की वस्तु नहीं है। 'मैं' आते ही 'मोक्ष' भाग जाता है। 'मेरा मोक्ष' यह वाक्य ही गलत है। 'मेरा' मिटने पर ही मोक्ष मिलता है।''

प्रह्लाद 'आदर्श सत्याग्रही' भी है। बाबा बताते हैं, प्रह्लाद ने अपनी बात छोड़ी नहीं। मन में पिता के विरुद्ध विचार पैदा नहीं होने दिया और उनका कुछ अपमान भी नहीं किया। इसलिए वह आदर्श सत्याग्रही है।''

प्रह्लाद के निम्न दो श्लोक बहुत महत्त्व के हैं – पहले श्लोक में नवधा भक्ति बतायी है –

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम्।

जब पिता हिरण्यकशिपु ने प्यार से प्रह्लाद को गोद में बिठाकर पूछा, 'बेटा, तुमने गुरुजी से क्या सीखा?'' तब प्रह्लाद ने इस नवधा भक्ति का जिक्र कर कहा – ''यदि भगवान के प्रति समर्पणभाव से यह नौ प्रकार की भक्ति हो, तो मैं उसी को उत्तम अध्ययन समझता हूँ।'' दूसरा श्लोक है –

कौमारे आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्।।

– इस संसार में मनुष्य-जन्म पाना बड़ा दुर्लभ है। इसके द्वारा अविनाशी परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पता नहीं, कब इसका अन्त हो जाय। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को बचपन से ही भगवत्प्राप्ति के लिए साधना शुरू कर देनी चाहिए।

'गीताई चिन्तनिका'' में बाबा ने थोड़े में प्रह्लाद का परिचय दिया है – (अ) परम भक्त (आ) सामूहिक साधना का प्रवर्तक (इ) निर्भयता मूर्ति (ई) आदर्श सत्याग्रही। ○○○

सब कुछ मन पर निर्भर है। बिना मन की शुद्धता के कुछ भी पाया नहीं जा सकता। कहा गया है, ''गुरु, कृष्ण, वैष्णव तीन की दया हुई। एक की दया बिना जीव की दुर्गति हुई।'' यह एक 'मन' ही है। साधक के मन को दयालु होना चाहिए।

अपने मन का सारा भार ठाकुर को सौंप दो। तुम उनके सामने अपने कष्टों को बताते हुए रोओ। तुम देखोगे कि वे तुम्हारी झोली तुम्हारी इच्छित वस्तुओं से भर देंगे। – श्रीमाँ सारदा देवी

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७१)

स्वामी भूतेशानन्द

(४७)

प्रश्न – महाराज ! स्वामीजी ने कहा है – श्रीरामकृष्ण भगवान के पिता है, इसका क्या अर्थ है?

महाराज – पिता नहीं होने से लड़के कहाँ से आयेंगे? यदि ठाकुर न रहें, तो भगवान कहाँ से आयेंगे? ठाकुर से ही तो भगवान की बात सीखेंगे। अत: भगवान के पिता हुए ठाकुर। तुम गणित करके देख लो न ! अच्छा नहीं लग रहा है क्या? (सभी हँसते हैं)

– हाँ, अच्छा लग रहा है महाराज ! श्रीमद्भागवत में कहा गया है – **एते चांशकला कृष्णास्तु भगवान स्वयम्।** अवतार उसी पुरुष के कला या अंश हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं। अर्थात् इसी श्रीकृष्ण से अन्य सभी अवतारों की उत्पत्ति हुई है। ऐसा है क्या महाराज?

महाराज – श्रीकृष्ण से उत्पन्न हुए हैं नहीं, श्रीकृष्ण पूर्ण भगवान हैं और जिनकी उत्पत्ति हुई है, वे कोई कला, कोई अंश हैं।

– यहाँ अंश कहा गया है। इसका अंश, इसकी कला – इसकी कला का तात्पर्य किसकी कला से है?

महाराज – इसका कहाँ? पुंस: – पुरुष का।

– यह पुरुष कौन है?

महाराज – पुरुष एव इदं सर्वम्। इसकी दो व्याख्यायें की गयी हैं। **पूर्ण अनेन सर्वं इति पुरुष** और **पुरि शेते इति पुरुष।**

– दोनों ही पुरुष हैं। आज वर्ष की अन्तिम संक्रान्ति है, कल से नया वर्ष प्रारम्भ हो जायेगा।

महाराज – इसीलिए पुरुष से समाप्त किया।

प्रश्न – ठाकुर कह रहे हैं – स्थान परिवर्तन करना होगा। बीच-बीच में एकान्त-वास करना होगा। क्या परिचित परिवेश से पृथक् होने के लिए यह बात कही जाती है?

महाराज – हाँ, जो लोग उत्तरकाशी में रहते हैं, उनलोगों को तपस्या करने के लिए दूसरे स्थान पर जाना होगा। वहाँ नहीं होगा।

प्रश्न – बांगलादेश की कुछ बातें बताइये।

महाराज – एक बार बांगलादेश गया हूँ। एक स्थान पर लोग गाड़ी रोककर गाड़ी के बोनट पर चढ़कर बैठ गये। यह एक कठिन समस्या आ गई ! हमलोग गाड़ी के भीतर बैठे हैं। क्या करेंगे सोच रहे हैं। पता नहीं क्या उनके मन में आया, फिर से उतर गये। हमलोगों को छोड़ दिये।

– हड़ताल थी महाराज?

महाराज – अरे, ये सब तो समझ नहीं आता है !

– कहाँ हुई थी महाराज? सिलेट में?

महाराज – सिलेट में ही हुई थी। ढाका से चिटगांग जा रहा था। वहीं गाड़ी पर बैठ गये। गाड़ी चलाने से यदि गिर जाय, तब तो हो ही गया, और क्या !

– बांगलादेश तो आप कई बार गये हैं?

महाराज – कई बार गया हूँ। बांगलादेश में जितना व्याख्यान देना पड़ा है, उन सबको एकत्र करने से एक बड़ा ग्रन्थ हो जाता।

– उद्बोधन से एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। वहाँ की भाषा में आपने व्याख्यान दिया था।

महाराज – सिलेट की भाषा थोड़ी-थोड़ी जानता हूँ। 'कइताम पारी, कइते पारी, कति पारि', ऐसा बोल सकता हूँ।

– कति पारि, किनकी भाषा है?

महाराज – यशोर की, खुलना की भी।

– ढाका की भाषा तो आप अच्छी तरह से जानते हैं। ढाका में आप थे?

महाराज – हाँ, ढाका में था। पहले हाप के खेल के स्थान पर गया। मैं पहली बार गया हूँ, सोच रहा हूँ – 'हाप-खेल' यह क्या है रे बाबा ! (सभी हँसते हैं।) उसके बाद निकलकर देखता हूँ – सँपेरे जा रहे हैं, साँप का खेल होगा ।

– साँप का खेल?

महाराज – हाँ, हापेर खेल। (सभी हँसते हैं) एक व्यक्ति कह रहा है, क्या कहूँ महाराज, हाला (साला) को क्या कहूँ महाराज ! मैंने सोचा – 'हाला हाला' क्यों कह रहा है? (सभी हँसते हैं) (वहाँ स को ह बोलते हैं, इसलिये हाला माने साला) विद्यालय का एक लड़का शिक्षक से शिकायत कर रहा है – ये हाला हमको हाला कहता है। (सभी हँसते हैं) तब शिक्षक कहता है – क्यों रे हाला ! क्या तुम इस हाला को हाला (साला) कहते हो? (सभी जोर से हँसते हैं)

– बांगलादेश में दीक्षा भी तो बहुत हुई है।

महाराज – हाँ, दीक्षा तो हुई है।

– सिलेट की भाषा कैसी है।

महाराज – अभी जो बताया। वैकाल्लाय हामिराय हामिराय वालूतले हालार पो हालाय येन मत्ते मादाई सम्भुत्थान सम्भुत्थान।

– कुछ समझा नहीं महाराज। अब बंगला में कहिए।

महाराज – शाम को सालों के बच्चों ने मदमत्त होकर बहुत हुल्लड़ मचाया।

कल बालू में सालों के बैलों ने बहुत उत्पात किया। वयरा माने बैल।

– बैल?

महाराज – बैल या भैंस क्या होगा नहीं जानता हूँ। मादाई येला माने जैसे उन्मत्त हो रहे थे, सम्भुत्थान सम्भुत्थान बहुत उत्पात किया। (सभी हँसते हैं)

प्रश्न – ठाकुर कहते हैं – सभी सियारों का एक ही स्वर होता है, इसका क्या अर्थ है?

महाराज – इसका अर्थ है, जितने अनुभवसम्पन्न पुरुष हैं, वे सभी तत्त्व की एक समान ही व्याख्या करते हैं।

– किन्तु यथार्थ में तो देख रहा हूँ, उन लोगों में बहुत अन्तर है।

महाराज – वह समझने में अन्तर है। तत्त्व में भेद नहीं है। एक सामान्य उदाहरण है – सर्वत्र उसी ईश्वर को देखना। इस सम्बन्ध में कोई प्रभेद है क्या?

– किन्तु बुद्ध ने कहाँ यह बात कही है?

महाराज – हाँ, बुद्ध ने कहा है – वासना-त्याग।

– बुद्ध ने पथ के सम्बन्ध में कहा है, किन्तु पाथेय के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। जिस पथ से सब कुछ प्राप्त होगा, उस सम्बन्ध में ठाकुर क्या कह रहे हैं – सभी सियारों का एक ही स्वर होता है?

महाराज – यदि सियार न बोले, तब?

– तब तो कुछ भी समझ में नहीं आयेगा महाराज !

महाराज – 'स्वर' तो कुछ रहेगा। तुम 'स्वर' को समझ नहीं सके?

– सियार ने बोला नहीं और हमलोग समझेंगे कि वह बोला नहीं।

महाराज – क्या कठिनाई है ! मौन रहा तो। तुम गाँव में कभी रहा नहीं तो, इसलिए समझ नहीं सका।

– उन सबका भी तो वैसा ही है।

महाराज – यहाँ मिल जा रहा है तो?

– कहाँ महाराज?

महाराज – अभी जो कहा – सर्वत्र वही एक ईश्वर-दर्शन।

– ठाकुर कहते थे – दर्शन तो एक ही है, किन्तु अभिव्यक्ति भिन्न प्रकार से हो रही है।

महाराज – वैसा होने दो न। 'रा' - स्वर की बात है।

– हमलोगों ने जो सुना है, उसी के द्वारा तो हमलोग विचार करेंगे। उन्होंने क्या दर्शन किया, उसे तो हमलोग नहीं जानते।

महाराज – उन्होंने क्या कहा है, वह तो विचार करोगे? उन्होंने कहा है – सर्वत्र ईश्वर-दर्शन। सभी लोगों ने कहा है।

भगवान बुद्ध ने इतना कहा – 'बहुजनहिताय बहुजन सुखाय'। किन्तु ईश्वर की बात पर वे मौन थे।

महाराज – उन्होंने पथ पर बल दिया है, पाथेय ऐसे ही हो जाता है।

– महाराज ! 'रा' – स्वर क्या तत्त्व को समझा रहा है या व्याख्या है?

महाराज – 'रा' – स्वर अर्थात् शब्द। उन लोगों का उपदेश। तत्त्व के सम्बन्ध में उपदेश।

– किन्तु उपदेश तो भिन्न है।

महाराज – वे सभी एक स्थान पर ले गये हैं तो।

– एक स्थान पर अर्थात् किस स्थान पर?

महाराज – यही – सर्वत्र ईश्वर का दर्शन करना।

कैसे ईश्वर-दर्शन हो सकता है, क्या इस सम्बन्ध में सबका एक विचार है?

शेष भाग पृष्ठ ४९९ पर

क्या पेड़ पौधे भी सोते हैं?

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक बार बचपन में एक बालक सायंकाल में खेल रहा था। खेलते हुए अचानक उसकी गेंद बागान में खो गई। बालक ने गेंद ढूँढ़ने के लिए अपनी माँ से सहायता माँगी। उस समय सूर्यास्त हो चुका था। माता ने बालक से कहा, 'नहीं, संध्या हो चुकी है, अब पेड़-पौधे सो गए हैं'। माता के इस वाक्य से बालक के मन में जिज्ञासा जाग उठी, क्या पेड़-पौधे भी सोते हैं? इस वाक्य ने बालक के मन में एक अमिट छाप अंकित कर दी। 'पेड़-पौधे सो रहे हैं' इसका कारण और स्रोत क्या है? इसी जिज्ञासा ने बालक को महान् वैज्ञानिक बनाया। भारत के ये महान् वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस थे। जगदीशचन्द्र बोस का जन्म ३० नवम्बर, १८५८ मुंशीगंज जिले के फरीदपुर (वर्तमान बंगलादेश) में हुआ था। उनके पिता का नाम भगवानचन्द्र बोस और माता श्रीमती बामासुन्दरी बोस थी।

बोस बचपन से ही जिज्ञासु थे। उनके मन में हमेशा प्रश्न उदित होते थे कि हवा क्यों चलती है? जल क्यों बहता है। बीज मृदा में नए पौधों के रूप में क्यों उगते हैं? मछली पकड़ने के लिए जल में बंसी कैसे डाली जाती है, पशुओं को कैसे चराया जाता है। इन सब प्रक्रियाओं में उनकी गहन रुचि थी। वे स्वयं से भी प्रश्न करते कि ये सब क्रियाएँ कैसे सम्पन्न होती हैं? और प्रश्नों के हल ढूँढ़ने में लग जाते।

जगदीशचन्द्र को जीवविज्ञान में विशेष रुचि थी। सन् १८८० में, वे चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन के लिए लंदन गए, लेकिन उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और उन्हें पढ़ाई अधूरी छोड़नी पड़ी। बाद में उन्होंने लदंन विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातक की परीक्षा पास की।

जगदीशचन्द्र बोस

भारत लौटकर बोस ने कोलकाता के प्रेसिडेंसी कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। लेकिन वहाँ उनके साथ भेदभाव किया जाने लगा। अँग्रेज अध्यापकों को जितना वेतन मिलता था, भारतीयों को उसका एक तिहाई वेतन दिया जाता था। तीन साल तक बोस ने बिना वेतन के कार्य किया। उनको सम्मान नहीं दिया जाता था। लेकिन कार्य के प्रति उत्साह, गहन ज्ञान तथा सुसंस्कृत आचरण के कारण बोस ने कॉलेज के संचालकों का मन जीत कर वहाँ चल रही भेदभाव रूपी परम्परा को समाप्त किया। उसके बाद से उन्हें पूरा वेतन दिया जाने लगा।

बोस अनुसंधान करना चाहते थे, परन्तु उसके लिए न तो उनके पास उपकरण थे, न ही प्रयोगशाला। बोस ने प्रयोगशाला की नींव के लिए लगभग १० वर्ष तक अपने वेतन की पाई-पाई बचाते हुए बड़ी ही तंगी के साथ जीवन बिताया। १८९६ में बोस ने विद्युत चुबंकीय तरंगों के बारे में लेख लिखा और इंग्लैण्ड की रॉयल सोसायटी ने उनके इस लेख के लिए उन्हें 'डॉक्टर ऑफ सांइस' की उपाधि से सम्मानित किया।

कहते हैं कि बुद्धि किसी एक क्षेत्र की धरोहर नहीं है, यह उन्होंने साबित कर दिया। बोस ने विद्युत चुबंकीय तरंगों के प्रेषण की अद्वितीय खोज से विज्ञान के क्षेत्र में भारत का नाम उज्ज्वल किया। उनके महत्त्वपूर्ण शोध के लिए उन्हें वैज्ञानिक समुदाय ने सम्मानित किया। लेकिन कुछ लोगों के विरोध के कारण रॉयल सोसायटी ने बोस के शोध कार्यों के प्रकाशन में देरी कर दी। उन्हें अपने प्रयोगों पर अटूट विश्वास था, इसलिए इन सब बाधाओं के बावजूद भी वे वैज्ञानिक पत्रिकाओं पर निर्भर नहीं रहे तथा उन्होंने ग्रन्थ लिखकर स्वयं ही उन्हें प्रकाशित किया। रॉयल सोसायटी ने उन्हें फेलो (सदस्य) के पद से सम्मानित किया। बोस ने ३० नवम्बर, १९१७ को कोलकाता में सुप्रसिद्ध शोध संस्थान बोस इंस्टिट्यूट (बसु विज्ञान भवन) की आधारशिला रखी। २० वर्षों तक वे संस्थान में शोध करते रहे। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता ने बोस की प्रतिभा को पहचान लिया था। निवेदिता ने बोस के शोध कार्य में सहायता की थी। डॉ. जगदीशचन्द्र ने बोस संस्थान के सामने

शेष भाग पृष्ठ ५२३ पर

नर्मदाष्टकम्

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

(छन्दः - अनुष्टुप)

नं नं नं नर्मदे ! मातः ! नराणां क्लेशहारिणि !
नर्मदेश्वरगर्भायै नित्यं तुभ्यं नमो नमः।।१।।

– नं बीजाक्षरयुक्त, मनुष्यों के क्लेश हरनेवाली, नर्मदेश्वर शिव को अपने गर्भ में धारण करनेवाली हे माँ ! तुम्हें हमारा सदा नमस्कार है।

रं रं रं रेवते ! रेवा रम्या रत्नाकरप्रिया।
रुचिरे ! रौद्ररूपायै नित्यं तुभ्यं नमो नमः।।२।।

– रं बीजाक्षरयुक्त हे रुचिर रेवती माँ, रेवा नामधारिणी तुम समुद्र की रमणीय प्रेयसी हो। रौद्ररूपा तुम्हें हमारा सदा नमस्कार है।

मं मं मं मेकलोत्पन्ना महेशशयनाश्रया।
माहेश्वरि ! महातीर्थेऽमेयलिङ्गालये ! नमः।।३।।

– मं बीजाक्षरयुक्त हे माहेश्वरी, तुम महान् तीर्थ हो, असंख्य शिवलिंग की निधि हो। तुम मेकल गिरि की पुत्री हो और भगवान् शिव के शयन की आश्रय-स्थल हो। तुम्हें हमारा नमस्कार है।

दं दं दं दयमाना त्वं दर्शनाद् दुरितापहा।
दीनानां दुःखहन्त्री त्वं देवि ! द्रवन्ति ! ते नमः।।४।

– दं बीजाक्षरयुक्त हे द्रवणशील देवी ! तुम दीनों की दुखहारिणी हो और दया दिखलाती हुई अपने दर्शनमात्र से पापों को नष्ट कर देती हो। तुम्हें हमारा नमस्कार है।

शं शं शं सलिलाकारा सोमोद्भवा शिवालया।
शिवप्रिये ! शिवोद्भूते ! शिवायै ते नमो नमः।।५।।

– शं बीजाक्षरयुक्त, शिव से उत्पन्न हुई हे शिवप्रिये! तुम जल-आकृति-धारिणी हो, सोमसुता हो और शिवालय हो। तुझ शिवा को हमारा नमस्कार है।

वं वं वं वरदे देवि ! वारिवस्त्रे ! वरानने !
विश्वपापविनाशाय विहारिण्यै नमो नमः।।६।

– वं बीजाक्षरयुक्त, जलरूपी वस्त्रधारिणी, सुमुखी वरदायिनी हे देवि, सबके पापों को नष्ट करने विहरणशील तुम्हें हमारा नमस्कार है।

सर्वेषां नर्मदातृत्वान्नर्मदेति प्रकीर्तिता।
अस्मान्नभीप्सितं दत्त्वा कृतार्थं कुरु नर्मदे !।।७।।

– सबको नर्म (आनन्द) देने के कारण आप नर्मदा नाम से प्रसिद्ध हो। हे नर्मदे, आप हमारा अभीष्ट भी सिद्ध कर कृतार्थ करें।

स्तुतिमिमां स्मरन्तः त्वां श्रद्धया तु पठन्ति ये।
मातः ! भवन्तु निष्पापाः ते सर्वे त्वदनुग्रहात्।।८।।

– हे माता, जो तुम्हें स्मरण करते हुए श्रद्धापूर्वक इस स्तुति को पढ़ें, वे सभी तुम्हारी कृपा से निष्पाप हो जायें।

मायापति को भूल गया क्यों !

भानुदत्त त्रिपाठी, मधुरेश

मायापति को भूल गया क्यों माया में ही मरता रे !
आया है जिस लिये यहाँ तू वही क्यों नहीं करता रे !!
जो है पारावार प्रेम का, याद न उसकी आती है,
अरे बावले ! ओस चाटकर प्यास कहाँ बुझ पाती है,
जो है तेरे पास, उसी का ध्यान क्यों नहीं धरता रे !
मायापति को भूल गया क्यों माया में ही मरता रे !!
ओटन लगा कपास यहाँ तू, राम-भजन को भूल गया,
विविध वासना की बाहों में, तू बेखटके भूल गया,
महा मोह-मद के शिखरों से तू क्यों नहीं उतरता रे !
मायापति को भूल गया क्यों माया में ही मरता रे !!
पुण्य प्रेम-परमार्थ छोड़कर, केवल पाप कमाता है,
श्वासों का अनमोल खजाना, क्यों यों व्यर्थ गँवाता है,
दर्प-द्वेष-के घोर गरल से क्यों जीवन-घट भरता रे !
मायापति को भूल गया क्यों माया में ही मरता रे !!
करके देख विवेक तनिक तू, साथ भला क्या जायेगा,
खाली हाथ अन्त में होंगे, तू केवल पछतायेगा,
पकड़ प्रेम की नाव क्यों नहीं, भवनिधि से तू तरता रे !
मायापति को भूल गया क्यों माया में ही मरता रे !!

श्रीरामकृष्ण-गीता (५)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

यस्य प्रकाशबोधोऽस्ति तमोबोधोऽपि तस्य च।
तथा हि पापपुण्यानां शुभाशुभावबोधयोः।।२१।।

अन्वय : यस्य (जिसे) प्रकाश-बोधः (प्रकाश का ज्ञान) अस्ति (है) तस्य (उसे) तमः-बोधः अपि **[**अस्ति**]** (अन्धकार का ज्ञान भी रहता है) तथा हि (उसी प्रकार) पाप-पुण्यानाम् **[**बोधेषु**]** पापपुण्य के बोध से अर्थात् जिसे पाप का ज्ञान है, उसे पुण्य का ज्ञान भी है) च (और) शुभ-अशुभ-अवबोधयोः (अच्छाई-बुराई बोध में भी अर्थात् जिसे अच्छाई का ज्ञान होता है उसे बुराई का भी ज्ञान होता है)।।२१।।

अनुवाद : जिसे प्रकाश का ज्ञान है उसे अन्धकार का ज्ञान भी रहता है। उसी प्रकार जिसे पाप का ज्ञान है उसे पुण्य का भी ज्ञान होता है और जिसे अच्छाई का ज्ञान होता है उसे बुराई का भी ज्ञान होता है।।२१।।

उपानद्गुढपादस्य न क्लेशः कण्टके यथा।
मनः कण्टकमल्लोके तत्त्वज्ञानेन सञ्चरेत्।।२२।।

अन्वय : यथा (जैसे) उपानत्-गूढ-पादस्य (पैर में जूता पहने होने पर) कण्टके (काँटे पर) **[**गच्छतः (चलने वाले को)**]** क्लेशः (कष्ट) न **[**भवति**]** (नहीं होता है) **[**तथा (उसी प्रकार)**]** मनः (मन) कण्टकमत्-लोके (कण्टकमय यह संसार में) तत्त्व-ज्ञानेन (तत्त्व ज्ञानरूप) **[**आवरणेन (आवरण द्वारा)**]** सञ्चरेत् (विचरण कर सकते है)।।२२।।

अनुवाद : जैसे पैर में जूता पहने होने पर काँटे पर चलनेवाले को कष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार कंटकमय इस संसार में मन भी तत्त्व ज्ञानरूप आवरण द्वारा विचरण कर सकता है।।२२।।

ज्ञानोन्मादः सदैवासीत् कश्चित्तु साधूरेकदा।
वाक्यालापं न कुर्वन्तमुन्मादं मन्वते नराः।।२३।।

अन्वय : एकदा (एक समय) कः-चित् तु (किसी एक) साधुः (साधु) सदा-एव (हमेशा ही) ज्ञान-उन्मादः (ज्ञानोन्माद अवस्था में) आसीत् (रहते थे) **[**केन-अपि-सह (किसी के साथ)**]** वाक्यालापम् (बातचीत) न कुर्वन्तम् (नहीं करते थे) नराः (लोग) **[**तम् (उन्हें)**]** उन्मादम् (पागल) मन्वते (समझते)।।२३।।

अनुवाद : एक समय एक साधु हमेशा ज्ञामोन्माद अवस्था में रहते थे। किसी के साथ बातचीत नहीं करते थे। लोग उन्हें पागल समझते।।२३।।

एकदा भैक्ष्यमादाय खलु लोकालयादथ।
स आदच्चादयच्छ वानमासीनः कुक्कुरोपरि।।२४।।

अन्वय : अथ एकदा (एक दिन) लोकालयात् खलु नगर से) भैक्षम् (भिक्षा) आदाय (ले आकर) सः (उन्होंने) कुक्कुर-उपरि (एक कुत्ते के उपर) आसीनः **[**सन्**]** (बैठकर) **[**तत् अन्नम् (उस भिक्षान्न को) स्वयम् (स्वयं)**]** आदत् (खाने लगे) च (एवं) श्वानम् **[**अपि**]** (कुत्ते को भी) आदयत् (खिलाने लगे)।।२४।।

अनुवाद : एक दिन नगर से भिक्षा लाकर वे एक कुत्ते के उपर बैठकर उस भिक्षान्न को स्वयं खाने लगे एवं कुत्ते को भी खिलाने लगे।।२४।। **(क्रमशः)**

उनसे व्याकुल होकर प्रार्थना करनी चाहिए। आन्तरिक होने पर वे प्रार्थना निश्चय ही सुनेंगे। व्याकुलता होने से ही अरुणोदय हुआ। उसके बाद सुर्योदय होगा। व्याकुलता के बाद ही ईश्वर दर्शन होता है। – श्रीरामकृष्ण देव

रामराज्य का स्वरूप (४/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

यह अभेदवृत्ति तो बिरले व्यक्तियों में आ सकती है। जिस व्यक्ति को पग-पग पर भेद का अनुभव हो रहा है, वह व्यक्ति अगर अपने वस्त्र को उतारकर अपनी अभेद-वृत्ति को दिखाने की चेष्टा करे, तो ऐसा अभेद केवल दम्भ होगा और समाज के लिए बड़ा अनुपयोगी होगा। भगवान कृष्ण कहते हैं कि जैसा बड़े करेंगे, उसे देखकर छोटे भी वैसा ही करेंगे। अगर कोई बड़ा व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं का पालन न करे, तो दूसरों के मन में वह स्थिति न होते हुए भी उस रूप में अपने को प्रदर्शित करने की वृत्ति आने का भय है, और ऐसा दिखाई भी देता है। ऐसी स्थिति में लोक-कल्याण के लिए, लोक-संग्रह के लिए ऐसे महापुरुषों के द्वारा भी वस्त्र धारण किया जाता है या भगवान के द्वारा वस्त्र धारण किया जाता है, जिन्हें वस्तुत: उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।

गोस्वामीजी ने दोनों का मिलन यहाँ पर भी करा दिया। भगवान वस्त्र धारण किए हुए हैं, पीताम्बर पहने हुए हैं, पीताम्बर ओढ़े हुए हैं। उनका दर्शन करने के लिए ये चारों महात्मा आए। ये चारों महात्मा नग्न हैं, वस्त्ररहित हैं। यहाँ बड़ा अद्भुत द्वैताद्वैत, भेद और अभेद का मिलन हुआ। भगवान राम ने एक अनोखा कार्य किया। क्या? यदि वे महात्मा महल में आए होते, तो वहाँ तो बैठने के लिए आसन होता। भगवान उन चारों महात्माओं को सिंहासन पर बैठाते। यहाँ वाटिका में तो कोई आसन था नहीं, तो महात्माओं को बैठने के लिए कौन सा आसन दिया जाय? तो भगवान राम ने अपना पीताम्बर उतार कर बिछा दिया। भगवान ने भी इन महात्माओं को देखकर अपने वस्त्र के आवरण को उतार दिया। द्वैताद्वैत, ईश्वर का जो स्वरूप है, वह समाज में मर्यादा की दृष्टि से है, भगवान राम का चरित्र एक श्रेष्ठ मर्यादा के रूप में दिखाई देता है। इसलिए वे अपने शरीर को मर्यादा के वस्त्र से ढके हुए थे। लेकिन जब भेद-बुद्धिरहित अद्वैत की स्थिति में इन महात्माओं को देखा, तो उन्होंने अपने आवरण को दूर कर दिया।

इसका अभिप्राय है कि लोक के लिए इस मर्यादा की आवश्यकता है। पर आप जैसे अभेद बुद्धि वाले जो हैं, जिनके जीवन में किसी प्रकार का कोई भेद-दर्शन है ही नहीं, उनके लिए इस आवरण को मैं स्वयं उतार देता हूँ और प्रभु ने आवरण उतार दिया। आवरण उतारकर उन महात्माओं को बिठाया। महात्माओं से प्रभु का बड़ा ही सुन्दर वार्तालाप हुआ। इन महात्माओं ने भगवान से भक्ति का वरदान माँगा। वे लोग वरदान माँगकर चले गये। यह जो अद्भुत मिलन हुआ, भगवान राम के इस व्यवहार को भगवान के साथ-साथ उनके तीनों भाई देख रहे थे। संत और भगवंत का संवाद सुन रहे थे। तब भरतजी ने हनुमानजी की ओर देखा, पर हनुमानजी से कुछ बोले नहीं, केवल संकेत किया कि आप तो पूछते ही रहते हैं, आपके सामने संकोच की बाधा नहीं है, पर मुझे बड़ा संकोच हो रहा है, आप ही मेरी ओर से प्रश्न कर दीजिए, तब हनुमान जी ने प्रभु से कहा –

नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं।
प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।। ७/३५/६

आश्चर्य है, पूछना वे चाहते हैं और पूछ तुम रहो हो? बोले। अब यहाँ पर भी फिर वही बात है, जो आगे चलकर और भी स्पष्ट हो गया कि अधिकार तो है, किन्तु संकोच है। श्रीराम से कुछ पूछने की अपेक्षा श्रीभरत में नहीं है और व्यवहार में भी कुछ पूछना चाहें, तो बीच में कोई दूरी नहीं है। पर दूरी न होते हुए भी श्रीभरत ने संकोच की दूरी बना ली। एक दीवाल की दूरी होती है, वह वास्तविक दूरी होती

है और संकोच की जो दूरी होती है, वह तो स्वभाव के द्वारा बनाई हुई एक दूरी होती है। उसी दूरी को श्रीभरत ने अपने और प्रभु के बीच में संकोच की एक रेखा खींच ली है। तो हनुमानजी ने कहा –

नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं।
प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं।।

भरतजी प्रश्न करने में संकोच कर रहे हैं। प्रभु श्रीराम ने अपने और भरत में अद्वैत का प्रतिपादन किया। एक ही पंक्ति में हनुमानजी की प्रशंसा की। कल जो प्रसंग चल रहा था। भगवान का स्वभाव इतना मधुर है, इतना मीठा है, इतना कोमल है ! यद्यपि कल व्यंग्य भरा एक वाक्य सुनने को मिला – एक ओर तो भगवान के उदारता की कथा चली और दूसरी ओर अपने बाप पर भी दया नहीं की, दशरथ पर भी दया नहीं की। तो यह बड़ा विचित्र-सा, बड़ा अटपटा-सा लगता है। वह एक अलग बात है, उसकी चर्चा बाद में हम फिर कभी करेंगे। पर इसमें गोस्वामीजी जो बात कहना चाहते हैं, वह बात बड़ी अनोखी है। भगवान श्रीराघवेन्द्र अद्वैत का प्रतिपादन करते हैं। पहले तो भगवान ने वह बात कही। क्या? भगवान जब किसी की बहुत अधिक प्रशंसा करते हैं, तो यह कहते हैं कि तुम मेरा स्वभाव जानते हो। स्वभाव सुनने में जितना सरल है, जानने में वह उतना ही कठिन है। स्वभाव की मधुरता और कोमलता की तो पराकाष्ठा है, पर स्वभाव को जान लेनेवाले व्यक्ति तो बिरले ही हैं। भगवान राम ने हनुमानजी की प्रशंसा की और प्रशंसा क्या कहकर किया। बोले –

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ।
भरतहि मोहि कहु अंतर काऊ।। ७/३५/७

हनुमान, तुम तो मेरे स्वभाव को जानते हो। जिन भरत के विषय में तुम कह रहे हो, तो तुम तो अच्छी तरह से जानते हो कि भरत में और मुझमें क्या कोई अन्तर है? भगवान राम ने श्रीभरत की ओर देखा। भरत, संकोच छोड़ो तुम जो पूछना चाहते हो, सीधे पूछ लो। यह पूरा प्रसंग जो है, द्वैताद्वैत का प्रसंग है।

श्रीभरत से जब प्रभु ने पूछा कि भरत, तुम्हारे हृदय में क्या संदेह है? तो श्रीभरत ने कहा कि महाराज मेरे हृदय में और संदेह? अरे, जागृत अवस्था की तो क्या बात है, सपने में भी मेरे जीवन में न तो शोक है, न मोह है और न तो संदेह है। सारे भाई भरतजी का मुँह देखने लगे। क्योंकि भरत की भाषा यह नहीं है। यह भाषा हनुमानजी की हो सकती है, लक्ष्मणजी की भाषा भी हो सकती है, पर

मोहि समान को पाप निवासू।
जेहि लगि सीय गए बनवासू।। २/१७८/३
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। २/२६०/६

जो सर्वदा अपने दोषों का ही वर्णन करता रहा हो, अपनी ही निन्दा करता रहा हो, वह श्रीभरत इतना बड़ा दावा करे–

नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।

एक सिद्ध, दिव्य पूर्णावस्था में जो पहुँच हुआ है, वही व्यक्ति यह दावा कर सकता है कि मेरे अन्त:करण में रंचमात्र शोक, मोह, संदेह नहीं रह गया है। भरतजी ने वह दावा किया। प्रभु ने मुस्कुरा कर देखा। बड़े प्रसन्न हुए। श्रीभरत ने ऐसा क्यों कहा? बड़े सावधान हैं। क्या? प्रभु ने अभी यह कहा है कि भरत में और मुझमें कोई भेद नहीं है और यदि मैं यह कहता हूँ कि मुझे संदेह है, तो हमारे प्रभु में भी संदेह माना जायेगा। तो बोले, प्रभु अगर हम दोनों अभिन्न हैं, तो न तो आप में शोक, मोह, संदेह है और न तो मुझमें है। अभिन्नता की दृष्टि से यह सत्य है। भगवान ने कहा कि चलो बहुत दिन बाद तुमने वास्तविकता को स्वीकार तो किया। तुम तो सदा शीलवान, संकोची हो। साधकों की भाषा में, वे जिस भाषा में बोलते हैं, यह श्रीभरत के चरित्र की विशेषता है। उनकी भाषा में लक्ष्मणजी सिद्ध हैं और सिद्ध की भाषा बोलते हैं और भरतजी सिद्ध हैं, पर साधक की भाषा बोलते हैं। भरत का चरित्र समाज के लिए इसलिए अधिक उपादेय है कि साधक अगर समझना चाहे, तो सिद्ध की भाषा में अगर वह साधन करेगा, तो उसका पतन हो जायेगा। इसलिए श्रीभरत के व्यक्तित्व की विशेषता यह है कि बहुधा वे जब भी बोलते हैं, तो साधक की भाषा ही बोलते हैं। लेकिन आज जब भरतजी बोले, तो सिद्ध की वाणी बोले और पूर्णता की वाणी में उन्होंने कहा –

नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।

यह अद्वैत स्थिति है। भगवान राम ने कहा चलो, अन्त में तुमने स्वीकार कर लिया। तुरन्त मोड़ दिया। फिर आ गये अपने अद्वैत में। अद्वैत का प्रतिपादन किया और द्वैत में आ गये। क्या? बोले महाराज, यह कोई मेरी विशेषता नहीं है। तब? बोले –

केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह। ७/३६/०

महाराज, आप सच्चिदानन्द घन हैं और सच्चिदानन्द घन होने के नाते अगर आपने मुझमें भी सच्चिदानन्दत्व प्रगट कर दिया और आपसे मैं अभिन्न हो गया, तो यह मेरी किसी साधना का परिणाम नहीं है, यह आपकी कृपा का परिणाम है। इसके और सूक्ष्म स्तर हैं। इसका अभिप्राय है कि भक्ति और वेदान्त की मान्यता में एक भेद है। वेदान्त की मान्यता यह है कि अभिन्नता का बोध विचार से होता है और भक्तों की मान्यता है कि अभिन्नता का बोध भगवान की कृपा से होता है। गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में अभिन्नता का प्रतिपादन बार-बार किया है। विनयपत्रिका यदि आप पढ़ेंगे, तो उसमें उतना रस सबको तो नहीं आता, पर आप में से जिनके लिए वह सम्भव हो, वे पढ़ें।

इस अभिन्नता का प्रतिपादन करने पर यह प्रश्न गोस्वामीजी के लिए किया जाता है, गोस्वामीजी मूलत: क्या हैं? अद्वैतवादी हैं या द्वैतवादी? उन्हें हम ज्ञानी मानें कि भक्त मानें? क्योंकि एक ओर जब वे दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं, तो शुद्ध वेदान्त के सिद्धान्त का वर्णन करते हुए दिखाई दे रहे हैं और दूसरी ओर भक्ति की इतनी महिमा है। तो उसका उत्तर यही है कि साध्य के तत्त्व के विषय में वे भले ही अद्वैतवादी हों, पर साधना के सन्दर्भ में वे यह नहीं मानते कि केवल विचारमात्र के द्वारा कोई व्यक्ति उस स्थिति का अनुभव कर सकता है। गोस्वामीजी यह स्वीकार नहीं करते। गोस्वामीजी यह कहते हैं कि जब तक भगवान कृपा न कर दें, बिना भगवान की कृपा के इस स्थिति में स्थित हो पाना किसी साधक के लिए सम्भव नहीं है। बस मूल अन्तर यही है और विनय-पत्रिका के प्रत्येक पद में जब वे वर्णन करते हैं, तो यह कह देते हैं –

जौ निज मन परिहरै बिकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा।

(विनय पत्रिका १२४)

यह सब कहते हुए भी गोस्वामीजी कहते हैं –

तुलसिदास सुनु हरि करुना बिनु बिमल विवेक न होई।।

गुरु के कृपा के बिना और भगवान की कृपा के बिना विमल विवेक नहीं होता है। और –

बिनु विवेक संसार घोर नदि पार न पावै कोई।

उसी सिद्धान्त का गोस्वामीजी ने जो स्रोत लिया है, वह भरत के चरित्र से लिया है। भगवान से अद्वैत स्थिति का जो अनुभव है, उसे वे अपनी साधना का परिणाम नहीं मानते, भगवान की कृपा का परिणाम मानते हैं। उसका अभिप्राय यह है कि साधना का परिणाम माने, तो कोई अद्वैत स्थिति का अभिमान न हो जाय। ज्ञान के साथ यह बड़ी समस्या है। ज्ञान या तो व्यक्ति को अभिमानी बना देगा या ज्ञान व्यक्ति को निरभिमानी बना देगा। ज्ञानी का पतन होगा, तो अभिमानी बना देगा और ज्ञानी अपनी स्थिति में रहेगा, तो निरभिमानी बना देगा। इसलिए भगवान राम जब ज्ञान की व्याख्या करते हैं तो कहते हैं –

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। ३/१४/७

ज्ञान की कसौटी यह है कि अभिमान न हो। वेदान्त की भाषा में 'शिवोऽहम्' 'ईश्वरोऽहम्' यह परम्परा भी प्रचलित है। पर इसके विपरीत भी देख जाता है। रावण ने भी एक बार दावा किया कि 'रामोऽहम्'। ऐसा वर्णन आता है। जब मंदोदरी ने भगवान राम का वर्णन किया, तो मंदोदरी को यह आशा थी कि रावण विरोध करेगा। रावण ने प्रारम्भ में विरोध किया भी, पर विरोध करने के बाद अन्त में कहा कि मंदोदरी, तुमने राम का वर्णन किया, पर अब मैं समझ गया। जिस राम का तुम वर्णन कर रही हो, वह तो मैं ही हूँ।

जानिउँ प्रिया तोरि चतुराई।
एहि बिधि कहहु मोरि प्रभुताई।। ६/१५/६

वेदान्त की भाषा भी शिवोऽहम् है और रावण भी कहता है, रामोऽहम्। भाषा तो शुद्ध वेदान्त की है, पर भिन्नता कहाँ पर है। इसमें भिन्नता यह है कि जहाँ पर शिवोऽहम् के साथ-साथ केवल शिव को छोड़कर व्यक्तिगत द्वैत शेष नहीं रह गया है। किसी की तुलना में मैं शिव हूँ और अन्य लोग अशिव है, अगर यह शिवता का ज्ञान व्यक्ति के जीवन में आए, तो व्यक्ति को शिवत्व का अभिमान होगा। केवल शिव हैं या केवल राम ही राम हैं। आगे चलकर वर्णन आता है न ! रावण ने भगवान राम के साथ क्या व्यवहार किया? भगवान ने रावण का सिर जब काट दिया, तो रावण का तेज निकलकर भगवान में समा गया। जब रावण का तेज समाने लगा, तो भगवान ने हँसकर कहा, तुमने कहा था रामोऽहम् कहने का अधिकार है। इसका अभिप्राय है कि अब रावण अलग रह गया क्या? अब तो रावण भगवान में एकाकार हो गया।

यह बड़ी जटिल स्थिति है कि व्यक्ति केवल अपने विचार को महत्त्व देता हुआ अपने आप में शिवत्व या ब्रह्म या रामत्व की बात कहे, तो यही आंशका है कि उस व्यक्ति के जीवन में अहंकार का उदय होगा। इसलिए भक्त लोग यह मानकर चलते हैं कि यह जो अभिन्न स्थिति का बोध है, यह व्यक्ति की साधना का परिणाम नहीं हो सकता है। साधना अन्त:करण शुद्धि के लिए उसमें सहायक बन सकती है। पर अन्त में, गोस्वामीजी कहते हैं कि सृष्टि तो चैतन्य का विलास है। चैतन्य का विलास है, यह तो नहीं दिखाई देता है। तो गोस्वामीजी कहते हैं, दिखाई देगा, पर कब? बोले –

रघुपति चरित बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै।

तुलसिदास कह चिदबिलास जग बूझत बूझत बूझै।।

गोस्वामीजी ने कहा, यह चैतन्य का विलास है, इसको समझने में समय लगेगा। जब भक्ति के द्वारा अन्त:करण शुद्ध हो जायेगा, भक्ति के द्वारा अन्त:करण धुल जायेगा, तभी इस सत्य की अनुभूति होगी, तभी समझ में आएगा। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ४८७ का शेष भाग

जैसे आग उगल रही थी। इसी बीच सन्त एकनाथ ने एक गदहे को प्यास से छटपटाते देखा, तो उनसे नहीं रहा गया। वे अपना गंगा-जल से भरा पात्र लेकर उस गदहे के पास गये और धीरे-धीरे पूरा गंगा-जल उसके मुख में उड़ेल दिया। इस प्रकार गदहे की तो प्राण रक्षा हो गयी, किन्तु भगवान भोलेनाथ के अभिषेक के लिए अब उनके पास गंगा जल शेष न था। उनके साथियों के यह कहने पर कि अब वे बिना गंगा जल लिये अपनी साधना कैसे पूर्ण कर सकेंगे? इस पर सन्त मुस्कराये और कहा, ''साथियो, साथ में तो तुम सब भी थे, किन्तु मैंने देखा कि भगवान रामेश्वर शिव स्वयं उस गदहे की देह में प्रकट हो गये और मुझसे शिकायत भरे शब्दों में कहने लगे – मैं प्यास के मारे छटपटाकर मर रहा हूँ और तुम जल लेकर मुझे नहलाने रामेश्वरम् जा रहे हो। भला मैं वह गंगा जल उसे न पिला देता, तो क्या करता?'' धन्य है वह दयाशीलता का विवेक जो समस्त प्राणियों में दया के माध्यम से ईश-सेवा करता है !

आज के युग में युवाओं के अन्दर अत्यन्त स्वार्थपरता और हिंसा की प्रवृत्ति का उत्तरोत्तर बढ़ना बड़ी चिन्ता का विषय है। मानव हृदय में दया का तो इतनी बुरी तरह लोप हो गया है कि सगे से सगा सम्बन्धी भी पीड़ा से तड़प रहा हो, हम पसीजते तक नहीं। जब मानव मानव के प्रति भी इतना संवेदनशील नहीं रहा कि वह दया का लघु मात्र भी आचरण कर सके, तो इतर प्राणियों के प्रति तो उसे दया आ ही नहीं सकती, जबकि समस्त योनियों में जीवन-यापन करते प्राणियों के अन्दर ईश्वर ही सूक्ष्म रूप से विद्यमान हैं। यह हमें भली प्रकार समझकर अपना जीवन व्यवहार करना चाहिए कि दया एक दैवी गुण है, हमें इसे मानव-धर्म का हिस्सा समझकर अपना जीवन बिताना चाहिए। यदि हम आध्यात्मिक सत्य की बात कहें, तो दया-धर्म के अनुष्ठान में जो दूसरे के प्रति दया से द्रवित रहकर जीव सेवा करता है, उसे ईश्वर की दया भी अनायास ही सुलभ रहती है। ○○○

पृष्ठ ४९२ का शेष भाग

महाराज – हाँ ! 'रा' – स्वर से यही बोध हो रहा है। ठाकुर 'स्वर' से यही समझा रहे हैं।

– शंकराचार्य, रामानुजाचार्य या मध्वाचार्य तो एक बात नहीं कह रहे हैं। उनके तत्त्वों में तो भिन्नता है।

महाराज – उन सबने क्या कहा है, क्या समझोगे?

– वह तो जानता हूँ। हमलोग बहुत कुछ नहीं जानते हैं। किन्तु यह चर्चा हमलोगों के ज्ञानवर्धन के लिए है महाराज।

महाराज – तत्त्व के सम्बन्ध में सभी एक ही बात कहते हैं। सबका एक ही सिद्धान्त है। यही ठाकुर की बात है।**(क्रमश:)**

इस बात के लिए कृतज्ञ होओ कि इस संसार में तुम्हें अपनी दयालुता का प्रयोग करने और इस प्रकार पवित्र एवं पूर्ण होने का अवसर प्राप्त हुआ।... हमें उसी मनुष्य के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए, जिसकी हम सहायता करते हैं – उसे साक्षात् नारायण मानना चाहिए। मनुष्य की सहायता द्वारा ईश्वर की उपासना करना क्या हमारा परम सौभाग्य नहीं है? – स्वामी विवेकानन्द

कालीपूजा विशेष

माँ काली और मृत्यु से डरें नहीं

डॉ. रेखा अग्रवाल

माँ का श्यामवर्ण बचपन में भयानक लगता था, पर उस ओर बार-बार देखने का मन भी करता था। उनका वर्ण काला क्यों है और जीभ क्यों बाहर निकाले हुई हैं। यह सब बहुत रोमांचक था। समय के साथ अध्यात्म में रुचि बढ़ती गई, परन्तु बचपन का वह प्रश्न कि माँ काली क्यों हैं? क्या माँ को इतना विकराल रूप ही मिला, हम बच्चों को डराने के लिये? जीभ का बाहर की ओर निकला हुआ होना कौतुहल का विषय तो था ही, परन्तु अब वही खोज बन गया। प्रस्तुत परिणाम-विचार उसी खोज का प्रसाद रूप है जो पाठकों को निवेदित कर रहीं हूँ। अथर्ववेद में काली शब्द का विवेचन है –

काली करली व मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिंगिनी विश्वरूची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः।।

काली नृत्य करनेवाली, काल का भी परिधान धारण करने वाली हैं। वे दिगम्बरा हैं अर्थात् दिक्-दिशाएँ ही जिनके वस्त्र हैं। काली अर्थात् काल में गमन करनेवाली, काली काल में रमण करने वाली हैं। वह विज्ञान के चार आयामों वाले जगत की सत्ता है। उससे परे वह महाकाल है अर्थात् अग्नि की दाहिकारूपशक्ति, ब्रह्म से अभेद है तुरीयावस्था में।

माँ काली का यह स्वरूप भयावह मान कर उसको दयामयी, प्रेममयी कहकर भय को आँखों से ओझल करने के लिये दुर्गा, तारा, महालक्ष्मी, महासरस्वती अन्य उपासना की जाती है। पर यह मन की चाल है कि काल के बारे में सोचना न पड़े, तथा मृत्यु की उपेक्षा कर दे। यहाँ पर कठोपनिषद के साहसी बालक नचिकेता का स्मरण हो आया, क्योंकि सामान्यत: लोग मृत्यु से डर कर भागते हैं, किन्तु इस जिज्ञासु ने निर्भय होकर मृत्यु का रहस्य मृत्यु देवता से स्वयं ही वरदान के रूप में पा लिया। ज्ञान अद्वितीय है, जिससे मृत्यु के सारे रहस्य खुल गये तथा जिज्ञासु के प्रश्नों के उत्तर रूप में कठोपनिषद कल्याण के लिये निर्मित हुआ। ऐसा ज्ञान जो अमृतत्व की प्राप्ति करा देता है।

मृत्यु स्वरूपिणी माँ काली तथा मृत्यु-देवता के जिज्ञासु के प्रति उपदेश दोनों ही हमें प्रेरणा देते हैं कि माँ से दूरी के कारण ही वह श्याम वर्ण की-सी दिखती हैं, जैसे मृत्यु के सम्बन्ध में अज्ञान जो कि हमारे असली स्वरूप के ज्ञान को छिपाये रहता है। श्यामवर्ण अज्ञान के कारण है तथा दूरी ही अज्ञान का दूसरा नाम है। हम माँ और मृत्यु दोनों से ही बहुत अपरिचित हैं, इसलिये परिचय नहीं होने तक हमने दूरियों की कल्पना कर रखी है। दूरी के कारण ही रंगहीन आकाश नीला तथा वर्णहीन जल श्याम दिखता है। अज्ञान ही दूरी है। क्योंकि पास से अर्थात् एकत्व हो जाने से ये सब वर्णहीन ही हैं, ऐसा बोध हो जाता है। पास जाने से ही यह पता चलता है कि दिखनेवाला सर्प रस्सी मात्र ही है। इसी तरह अन्धकार अर्थात् स्वयं के बारे में अज्ञान हमको मृत्यु के बारे में भयभीत करता है तथा दौड़ाता रहता है जन्म-मरण के चक्करों में। मृत्यु रूपी माँ के साथ सम्बन्ध जोड़कर उनको अपने हृदयाकाश में उतार कर देखें, तो स्पष्ट पता चलता है कि माँ आलोकपुंज, शुभ्ररूप, चिन्मयी हैं, श्याम वर्ण नहीं। दूरी से ही वर्ण है, भय है, अन्धकार रूपी अज्ञान है जो कि काला होता है। दूरी ही अनेकता का भी कारण है जिसके रहते हम अज्ञानी बने रहते हैं, क्योंकि ईशावास्योपनिषद् में ब्रह्म का निरूपण इस प्रकार किया गया है –

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

माँ का यथार्थ रूप अनुभूति में ही है। बचपन में भयपूर्ण परन्तु आकर्षक लगनेवाला रूप माँ का प्रचलित रूप है, जिसका विवेचन भयंकरा, भीमा, उच्छेदक, प्रलयकारी, नाशिका, मुण्डमालाधारिणी तथा रक्त से भरा कटोरा लिये हुए के रूप में किया गया है। माँ काली के परमवीर उपासक ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव के प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द की भाषा में अगर माँ का रूप चित्रित करें, तो **''चरण उठकर सर्वदा को एक विश्व मिट रहा है।''** ठाकुर की जीवनी तथा सन्देश यह है कि काली के रूप में उपासना तथा प्यार

महाकल्याणकारी है तथा आराध्य एवं आराधक की भक्ति, प्रेम, श्रद्धा ही परम सत्य है। उसमें वर्ण मानो विलीन हो जाता है। काली ही स्व के स्वरूप में शुभ चिन्मयी रूप में हृदयाकाश पर उतर कर मानो आविष्ट हो जाती हैं।

पर मृत्यु या काली की उपासना कौन करे? मृत्यु से सभी डरते हैं, परन्तु मृत्यु तो जीवन का परम सत्य है। युधिष्ठर से यक्ष का प्रश्न भी यही था, ''किम् आश्चर्यम्?'' जिज्ञासु नचिकेता प्रलय, नाश, मृत्यु को प्यार कर के ही उसके पास पहुँचता है और तीन वरदान प्राप्त करता है। मृत्यु के प्रेम ने उसके पिता के कल्याण के रूप में मोह, क्रोध, ममता जैसे मानव हृदय के विकारों से छुटने का मार्ग दिखाया तथा परिवार में आचरण का मापदण्ड दिया है। दूसरे वरदान के रूप में ज्ञानाग्नि को सर्वोच्च बताया, जिससे अज्ञान को जलाकर जन-समाज पुण्यकर्मों में लगकर स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त हो सकता है। मृत्यु के प्रसन्न होने पर दी गयी रत्नजड़ित माला प्रेमी नचिकेता के कर्मो के फलों को सदा के लिये दग्ध कर देती है। तीसरे वरदान के रूप में हमें स्वयं के लिये तो सर्वस्व का ज्ञान भण्डार तथा मुक्ति के द्वार पर पहुँचने के पहले क्या, कैसी तैयारी करनी पड़ेगी, उस सैद्धान्तिक प्रणाली का क्रमिक विवरण दे दिया गया है। क्या यह सब सम्भव हुआ होता, अगर नचिकेता मृत्यु से भेंट किये बिना, तीन दिनों के उपवास के बिना, प्रतीक्षा किये बिना वापस खाली हाथ लौट आता? निर्भीक होकर मृत्यु से ही वरदान रूप में हमें यह सब प्राप्त होगा, मान कर मृत्यु से न डरें, बल्कि उसके असली रूप को पहचान कर उसकी श्यामवर्ण-जन्य बाधकता को दूर करना चाहिए। एक यथार्थ रूप में प्रेम करनेवाला निडर प्रेमी कहता है,

''साहसी जो चाहता है दु:ख, मिल जाना मरण से।
नाश की गति नाचता है, माँ उसी के पास आयी।।''

अब विचार करें कि हम माँ से कौन-सा सम्बन्ध बनायें। यदि हम जीवन में माँ के प्रति शिशु बन सकें, तो कल्याण सम्भव है। माँ के अनेक बेटे हैं, उसका प्यार सभी पर बराबर होता है। बच्चा जो माँ पर पूरी निर्भरता दिखाता है, माँ तभी उसकी पूरी रक्षा का भार लेती है। बच्चा माँ के आदेशों का पालन करता है तथा माँ को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। माँ वही काम देती है, जो वह बच्चा कर सकता है। फिर कभी माँ उसे बड़ा दिखनेवाला काम करने को कहती है, बच्चा मना नहीं करता, बल्कि खुशी-खुशी कर देता है। अगर बच्चा प्रयत्न करके ठीक नहीं कर पा रहा है, तो माँ उसकी मदद करती है। माँ देखती है कि बच्चा उसके संयन्त्र-स्वरूप हो गया है। इसी प्रकार हम जीवन के कर्त्तव्य-कर्म करें तथा पुरुषार्थ से च्युत न हों। पर ध्यान रहे कि माँ की आज्ञा है इसलिये कर रहे हैं। छोटे बालक की तरह –

लिया है शरण पद कमल में बढ़ा हाथ माँ ले गोद में।
है वे आस मेरी तेरी पद छाया हो अंकित हृदय में।।

नचिकेता बालक है, सत्य और न्याय का पक्षधर है, तीव्र-कुशाग्र बुद्धि से सम्पन्न है। साथ में ही सर्वथा परम वैराग्यवान है। उसको मृत्यु का रहस्य अर्थात् पता चलना कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है परमावश्यक है। वह यमराज के समक्ष पिता के आज्ञापालन के रूप में आया है, तो प्रार्थी है। विचारवान है, इसलिये चिन्तन करता है अपने पिता के इस उद्देश्य का तथा यमराज के सामने उद्देश्य पूर्ति हेतु उनसे श्रद्धा से गुरु रूप में प्रश्न करता है। यह सम्बन्ध हम उपासना द्वारा माँ से भी स्थापित करते हैं, उसके पास जाने का प्रेम ही ऐसा माध्यम है – मुँह से माँ कहें और उसे हृदय में उतार लें। सब कुछ माँ देगी। विशेष पूजा के दिनों में माँ का स्वरूप उपासकों में भाव की तीव्रता लाता है। परन्तु नौ दिन पूजा करके मूर्ति विसर्जित कर देने से लाभ नहीं है। नित्य प्रतिदिन की उपासना ही हृदय में माँ को उतार सकती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पुरुषार्थों का सम्भव होना, माँ की ही कृपा है। यमराज भी यह बताते हैं कि स्वर्गादि का अन्त होता है, भावना की पकड़ छूटने से व्यष्टि से तादात्म्य हो जाने से स्वर्ग से लौट आना पड़ता है। अर्थात् पुन: जन्म लेता है। अत: उपासना द्वारा प्रेम सम्बन्ध स्थापित करो या ज्ञान द्वारा जीवन-व्यष्टि का नाश कर, ईश्वर समष्टि-अहंकार से तादात्म्य कर परमार्थप्राप्ति। ज्ञानाग्नि से ही परमार्थ की प्राप्ति सम्भव है, इसलिये उसे पाना आवश्यक है।

अन्त में बचपन का माँ के प्रति कौतुहलवश आकर्षण तथा विदेश अध्ययन तथा पाश्चात्य-प्रवास ईश्वर कृपा से महानुभावों से परिचय, स्नेह तथा सानिध्य ही नचिकेता की ज्ञानाग्नि को हमारे जीवन में ले आया। ऐसा इस कृपा प्रसाद के रूप में सदैव माँ काली का यर्थाथ रूप-चिन्तन तथा मृत्यु से निडरता प्राप्त हुयी। ○○○

प्रश्नोपनिषद् (१८)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

किं च –

इसके अतिरिक्त –

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः।।२/११।।

अन्वयार्थ – प्राण हे प्राण, **त्वम्** तुम **व्रात्यः** नित्य शुद्ध हो (उपनयन अदि संस्कारहीन हो, प्रथम-जन्मा होने से तुम्हारा संस्कारक कोई नहीं है), **एकर्षिः** एक-ऋषिः एकर्षि नामक अग्निस्वरूप से **अत्ता** हविष्य के भोक्ता हो (और) **विश्वस्य** विश्व के **सत्पतिः** श्रेष्ठ स्वामी (असि) हो, **वयम्** हमलोग (तव) तुम्हारे **आद्यस्य** भक्षणीय हविष्य के **दातारः** दाता हैं। मातरिश्व हे अन्तरिक्ष में विचरण करनेवाले मातरिश्वा, **तुम नः** हमारे पिता हो। (पाठभेद से – पिता **त्वम् मातरिश्वनः** तुम वायु के भी अर्थात् सबके पिता हो।)

भावार्थ – हे प्राण, तुम नित्य शुद्ध हो (उपनयन अदि संस्कारहीन हो, प्रथम-जन्मा होने से तुम्हारा संस्कारक कोई नहीं है), तुम एकर्षि नामक अग्निस्वरूप से हविष्य के भोक्ता हो और विश्व के श्रेष्ठ स्वामी हो, हमलोग तुम्हारे भक्षणीय हविष्य के दाता हैं। हे अन्तरिक्ष में विचरण करनेवाले मातरिश्वा, तुम हमारे पिता हो। (पाठभेद से – तुम वायु के भी अर्थात् सबके पिता हो।)

भाष्य – प्रथमजत्वात् अन्यस्य संस्कर्तुः अभावात् असंस्कृतः व्रात्यः त्वं स्वभावतः एव शुद्धः इति अभिप्रायः। हे प्राण एकर्षिः त्वम् अथर्वणानां प्रसिद्धः एकर्षि-नाम-अग्निः सन् अत्ता सर्व-हविषाम्। त्वमेव विश्वस्य सर्वस्य सतः विद्यमानस्य पतिः सत्पतिः। साधुर्वा पतिः सत्पतिः।

भाष्यार्थ – सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण संस्कार कराने हेतु अन्य किसी का भी अभाव होने से, तुम असंस्कृत हो (अर्थात् तुम स्वरूपतः शुद्ध हो।) हे प्राण, अथर्ववेदियों के प्रसिद्ध एकर्षि नामक अग्नि होकर तुम सारे हविष्यों के भोक्ता हो। (ब्रह्माण्ड में) जो कुछ विद्यमान है, उन सभी के तुम्हीं सत्पति अर्थात् स्वामी हो। अथवा तुम ब्रह्माण्ड के पवित्र स्वामी हो।

भाष्य – वयं पुनः आद्यस्य तव अदनीयस्य हविषः दातारः। त्वं पिता मातरिश्व हे मातरिश्वन् नः अस्माकम्। अथवा मातरिश्वनः वायोः त्वम्। अतश्च सर्वस्यैव जगतः पितृत्वं सिद्धम्।।

भाष्यार्थ – फिर, हम तुम्हारे भक्षणीय हविष्य के दाता हैं। हे मातरिश्वा (वायु), तुम हमारे पिता हो। अथवा (विकल्प से) तुम वायुओं के पिता हो। इससे भी यह सिद्ध हुआ कि तुम सम्पूर्ण जगत् के पिता हो।।२/११।।

* * *

किं बहुना –

बहुत क्या कहें (संक्षेप में) –

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः।।२/१२।।

अन्वयार्थ – **ते** तुम्हारा **या** जो **तनूः** अंश या रूप **वाचि** वाणी में प्रतिष्ठिता अवस्थित है, **या** जो **श्रोत्रे** श्रवण-इन्द्रिय में **च** और **या** जो चक्षुषि नेत्र में (प्रतिष्ठिता) अवस्थित है, **च** और **या** जो (संकल्प आदि के रूप में) **मनसि** मन में **सन्तता** व्याप्त है, **ताम्** उस (अंश को) **शिवाम्** प्रशान्त **कुरु** करो – (उनसे) **मा उत्क्रमीः** ऊपर मत उठो।

भावार्थ – तुम्हारा जो अंश या रूप, वाणी में अवस्थित है, जो श्रवण-इन्द्रिय में और जो नेत्र में अवस्थित है और जो (संकल्प आदि के रूप में) मन में व्याप्त है, उस (अंश को) प्रशान्त करो – (उनसे) ऊपर मत उठो।

शेष भाग पृष्ठ ५२३ पर

यात्रा-वृत्तान्त

रामकृष्ण मिशन फ्रांस और जर्मनी की यात्रा

डॉ. गोपेश द्विवेदी, बिलासपुर

विश्ववन्द्य परिव्राजक सन्त स्वामी विवेकानन्द जी सन् १८९३ शिकागो में भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रचार से विश्व-पटल पर छाने के पश्चात् तीन बार फ्रांस गए थे – सन् १८९५, १८९६ और १९०० में। इसके साथ ही सन् १८९६ में स्वामीजी ने स्विटरजलैंड और जर्मनी की भी यात्रा की थी। पेरिस के बारे में स्वामीजी ने कहा था कि यह यूरोपियन सभ्यता का उद्गम है, जैसे गोमुख गंगा का। फ्रांस को स्वामीजी विज्ञान, दर्शन और कला के क्षेत्र में यूरोप का केन्द्र मानते थे। फ्रांस विश्वव्यापी स्तर पर सांस्कृतिक और आलंकारिक कला का केन्द्र रहा है, इसलिए स्वामीजी को तो फ्रांस जाना ही था। क्योंकि वे धर्म, कला, संस्कृति और साहित्य के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों में से एक थे।

जहाँ की धरती पर स्वामीजी के चरण पड़े हों, जहाँ उनके आभामंडल की ज्योति हो, जहाँ उन्होंने ध्यान किया हो, उस स्थान पर रामकृष्ण-भावधारा को पहुँचकर स्थायी केन्द्र बनना ही था। नोबेल पुरस्कार विजेता रोमाँ रोला ने क्रमश: १९२९ और १९३० में श्रीरामकृष्ण की जीवनी और स्वामी विवेकानन्द की जीवनी प्रकाशित की थी। १९३६ में फ्रांस में श्रीरामकृष्ण का जन्म-शताब्दी-महोत्सव मनाया गया था। इसमें वहाँ के सोरबन्न यूनिवर्सिटी के नामी प्रोफेसर भी थे। १९३७ में रामकृष्ण मिशन, फ्रांस एक केन्द्र के रूप में स्थापित हुआ। १९४८ में मिशन को अपना केन्द्र बनाने की लिए भूमि भी मिल गयी। इन सबका श्रेय सर्वप्रथम स्वामी सिद्धेश्वरानन्द (निर्वाण १९६१) और फिर स्वामी रीतजानन्द (निर्वाण १९९४) को जाता है, जिन्होंने इस केन्द्र को स्थापित करने में अथक परिश्रम किया था।[१]

सेन्टर वेदान्तिक्यू रामकृष्ण, ग्रेट्ज़, फ्रांस का मन्दिर का बाहरी भाग

यात्रा मनुष्य के लिए आवश्यक है, यह दैनिक जीवन के कर्मों से ध्यान हटाकर कुछ नया देखने और समझने को प्रेरित करती है। ऐसी एक यात्रा में मई, २०१८ में मुझे भी फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैंड जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह योजना मेरे भाई के कारण बनी थी, जो वर्तमान में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी के अन्तर्राष्ट्रीय मुख्यालय में कार्यरत और जर्मनी में निवासरत है। परिवार में चार लोगों के लिए वीसा आवेदन दिए थे और हवाई टिकटों की बुकिंग के साथ तैयारी पूरी हो चुकी थी, परन्तु अन्तिम समय में श्रीठाकुर जी की इच्छा से ही योजना बदल गयी और वीसा मात्र २ लोगों को मिल पाया। १४ वर्षीय बेटे का वीसा नहीं मिलना एक आश्चर्य ही था, परन्तु इसे ईश्वर की इच्छा मानकर दो लोगों के जाने का तात्कालिक कठिन निर्णय लेना पड़ा। नई योजना में पत्नी तथा बेटा अगले वर्ष आएँगे, ऐसा मन बनाकर आगे की यात्रा करनी पड़ी, जो बाद में कार्यान्वित हुई। बेटी और मैं यात्रा पर निकले।

जर्मनी पहुँचने और वहाँ के वातावरण में कुछ दिन रहने के बाद भाई ने सुझाव दिया की फ्रांस जाने को तैयार रहें। मैंने भाई को यह पता करने कहा कि फ्रांस में रामकृष्ण मिशन के गेस्ट हाउस में कमरा मिल सकता है क्या? जब भी ऐसे किसी शहर में जाता हूँ, जहाँ रामकृष्ण मिशन का केन्द्र हो, तो एक अभिलाषा मन में रहती है कि कम-से-कम एक बार वहाँ के ठाकुरजी का दर्शन कर सकूँ। फोन करने से पता चला कि फ्रांस केन्द्र के गेस्ट हाउस में कमरा मिल जाएगा, तो हम सब तैयार हो गए। रामकृष्ण मिशन के ग्रेत्ज स्थित केन्द्र में जाने का अविस्मरणीय सुयोग मिला, यह बहुत सुखद संयोग रहा। मैं और बेटी, साथ ही भाई एवं उसकी पत्नी मिशन से दीक्षित हैं, इसलिए मिशन गेस्ट हाउस में रुकने में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। उसके दोनों बच्चों सहित सभी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

भाई के परिवार के साथ वाल्डोर्फ से फ्रांस पहुँचते हुए रात्रि हो गयी। नियम के अनुसार रात्रि में आश्रम का मुख्य द्वार समय पर बन्द हो गया और टेलीफोन पर ही इसकी सूचना मिल जाने पर हमें पेरिस के बाहर एक छोटे से

होटल में रुकना पड़ा, क्योंकि वहाँ उस दिन बहुत अधिक वर्षा हो रही थी, जिससे कार चलाने में परेशानी हो रही थी। अगले दिन सबेरे ही हमलोग आश्रम में पहुँच गये, तो हमें गेस्ट हाउस में कमरा मिल गया, परन्तु इस बात से निराशा अवश्य हुई की अध्यक्ष महाराज पूज्य स्वामी वित्मोहानन्द जी अमेरिका गए थे, इसलिए उनसे भेंट नहीं हो सकेगी।

जैसे ही हमलोग गेस्ट हाउस के कमरे के सामने पहुँचे, तो यह देखकर मन अति उत्साहित हो गया कि मेरे कमरे का नाम 'मनन कुटीर' था जो आश्रम के अन्तिम छोर पर घने और ऊँचे वृक्षों के बीच में पूरी तरह लकड़ियों से निर्मित एक कौटेज था। सबेरे चिड़ियों का कलरव और रात में गहन शान्ति का अनुभव एक साथ होता था।

जल्द ही हमलोग स्नान करके मन्दिर पहुँचे, तो श्रीठाकुर के पूजा-कक्ष को देखकर विश्वास नहीं हुआ कि यह विदेशी धरती पर है। ठंड के कारण वहाँ जमीन पर कालीन बिछी हुई होती है, जो कि पूरी तरह साफ-सूथरी थी। कक्ष में हारमोनियम एवं तबला था और कमरे के दो कोनो में श्रीगणेश और श्रीकृष्ण की मूर्तियाँ थीं।

थोड़ी देर में खाने का समय हो गया। भोजन बड़े ही व्यवस्थित ढंग से हुआ, जिसका प्रारम्भ गीता के ऊँ ब्रह्मार्पणं... मन्त्र के साथ हुआ, जो रामकृष्ण मिशन की परम्परा है। उसके साथ ही कुछ और मन्त्रों का भी उच्चारण हुआ। उसके पश्चात् भोजन परोसने और खाने का क्रम हुआ। भोजन के पश्चात् कुछ भक्तों ने बर्तन धोने का कार्य स्वीकार किया था, तो कुछ बर्तन डिश-वाशर और बाकी नल के नीचे रख कर धोने से आधे घंटे में पूरी साफ-सफाई हो गयी। जिन महिला-भक्तों ने खाना बनाने का दायित्व लिया था, वे शाम से ही रात के भोजन-व्यवस्था हेतु तैयारी में जुट चुकी थीं।

शनिवार का दिन था। करीब ४०-५० भक्त वहाँ उपस्थित थे। पता चला कि शनिवार और रविवार को नियमित रूप से भक्त आश्रम आते हैं, यहीं गेस्ट हाउस में रहते हैं और सेवा करते हैं। हम दो भारतीय परिवार को छोड़कर सभी वहाँ के मूल निवासी थे।

१७ एकड़ में फैला हुआ आश्रम का पूरा परिसर सघन वृक्षों से भरा है। वहाँ फूलों का बगीचा है, एक गोशाला है, योग केन्द्र है, कपड़ा धोने की बड़ी मशीन है, दो सभा कक्ष भी हैं। जो भी भक्त जिस कार्य को जानता है, उसे वह कार्य दे दिया जाता है। मैंने देखा, इन सभी कार्यों के लिए विशेष योग्यता, अनुभव और जानकारी की आवश्यकता होती है। ब्रह्मचारी महाराज ने मेरे द्वारा कार्य माँगने पर कुछ छोटा-छोटा काम दिया, जिसे मैं अपने मन की संतुष्टि के लिए कर पाया।

शाम को श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ और तत्पश्चात् आरती थी। अगले दिन प्रात: मंगल आरती में पहुँचा, तो ध्यान-कक्ष बहुत शान्त था, जबकि लगभग पूरा कक्ष भरा हुआ था। एक ही आसन और एक जगह पलथी लगाकर, स्थिर होकर बैठने तथा ध्यान करने की क्षमता उन लोगों की इतनी अद्‌भुत होगी, मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

एफिल टावर

ब्रह्मचारी महाराज से आज्ञा प्राप्त कर हमने फ्रांस के अन्य दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया, जिसमें विश्व प्रसिद्ध फ्रेंच ओपेन टेनिस कोर्ट था, जहाँ बड़े खिलाड़ियों का अभ्यास चल रहा था और हमलोग एफिल टावर पर भी चढ़े, जहाँ से पेरिस का बड़ा अद्‌भुत दृश्य दिखाई देता है। एफिल टावर का उद्‌घाटन ३१ मार्च, १८८९ को हुआ था। स्वामीजी सन् १९०० में जब पेरिस के प्रवास में थे, तब यूनिवर्सल एक्सिबिशन में भ्रमण के दौरान उन्होंने एफिल टावर के ऊपर स्थित रेस्तराँ में भोजन भी किया था।[२] प्रदर्शनी के दौरान ही स्वामीजी और आचार्य वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु और उनकी सर्वगुणसम्पन्न सहधर्मिणी से भेंट भी हुई थी।[३]

मिशन कार्यालय से प्राप्त स्मारिका में विवेकानन्दजी की फ्रांस यात्रा का वर्णन है, जो युगनायक विवेकानन्द के भाग दो और तीन में भी मिलता है। स्मारिका के अनुसार सन् १८९५ में स्वामीजी अपने मित्र फ्रांसिस लेगेट के विवाह में शामिल हुए थे, जो सन् १८९८ में वेदान्त सोसाइटी ऑफ न्यूर्याक के प्रथम अध्यक्ष भी बने। अपनी यात्राओं में माउंटसौरिस उद्यान, लौवर संग्रहालय, हाउस ऑफ लेगेट्स, थिएटर दे ला विले, होटल कॉन्टिनेंटल, सेंट लाजारे रेलवे स्टेशन, माइकल पहाड़ आदि अनेक स्थानों पर स्वामीजी ने भ्रमण किया था। सन् १९०० में स्वामीजी पहले अपने मित्र गेराल्ड नोबेल और फिर लेखक मित्र जुल बोआ के ३९ रुआ गजान स्थित घर में ठहरे थे।[४] १९०० में स्वामीजी को धर्मसभा में 'धर्म का इतिहास' विषय पर बोलने हेतु

आमंत्रित किया गया था, जहाँ उन्होंने अपना वक्तव्य फ्रेंच भाषा में दिया था। ऐसा प्रमाण है कि अपनी गुजरात यात्रा में स्वामीजी ने पोरबंदर में फ्रेंच भाषा सीखी थी। आध्यात्मिक साधक और विद्वान प्रशासक श्री शंकर पांडुरंग पंडितजी ने स्वामीजी को फ्रांस जाने एवं फ्रेंच भाषा सीखने का आग्रह किया था, जो स्वयं स्वामीजी से बहुत प्रभावित थे। रामकृष्ण मठ और मिशन का जो वर्तमान संघात्मक स्वरूप है, उसका श्रीगणेश पेरिस से ही हुआ था। जहाँ से स्वामीजी ने कागजात तैयार कर बेलूड़ मठ भेजा था।[५]

मिशन गेस्ट हाउस के नियमानुसार गेस्ट हाउस खाली करते समय अपनी चादर, गिलाफ वाशिंग मशीन में पहुँचाना पड़ता है, कमरा एक बार साफ करना होता है। इस कार्य के उपरान्त हमलोग ठाकुरजी के मंदिर में प्रणाम करते हुए मधुर स्मृतियों और आत्म-सन्तुष्टि देनेवाली यात्रा के साथ-साथ पेरिस से वापस फिर वाल्डोर्फ पहुँच गए।

जर्मनी में भाई के निवास वाल्डोर्फ से रामकृष्ण मिशन का बींडवाइड केन्द्र सबसे निकट है। लगभग २२५ कि. मी. की दूरी और ३ घंटे की यात्रा रोड द्वारा है। बेत्ज्दोर्फ सिएग रेलवे स्टेशन से ९ कि.मी. स्टेनेबैक नामक शान्त गाँव हैं, वहीं यह केन्द्र है। वहाँ के गाँव अत्याधुनिक हैं, सड़कें साफ-सुथरी हैं, सभी घर पक्के बने हैं। भाई जर्मनी के रामकृष्ण मिशन केन्द्रों से जुड़ा है, इसलिए उसे आध्यात्मिक सम्मेलन और कार्यक्रम की जानकारी होती है। उसने एक रविवार के दिन बींडवाइड केन्द्र में भक्त-सम्मलेन में जाने को तैयार होने को कहा। यहाँ सवेरे निकल कर रात्रि तक वापस आने की योजना थी। जब हम पहुँचे, तो लगभग ३०-४० भक्त वहाँ उपस्थित थे। हमें आयर लैंड केन्द्र के प्रभारी स्वामीजी और परम पूज्य स्वामी बाणेशानन्द जी का आशीर्वचन सुनने को मिला और तत्पश्चात् भोजन-प्रसाद हुआ, जो भक्त और संन्यासियों के संयुक्त प्रयास से बनाया गया था। स्वामी बाणेशानन्द जी स्वयं ही प्रसाद-वितरण में में लग गए थे, इससे बहुत आनन्द आ गया। इस केन्द्र के पीछे घना जंगल और उसके बीच में एक सरोवर भी है, जहाँ बहुत से भक्तों ने पैदल चल कर ट्रैकिंग का आनन्द लिया। इस केन्द्र में जाकर एक प्रकार से अमरकंटक रामकृष्ण कुटीर और वहाँ के वनांचल की स्मृति ताजी हो गयी। यहाँ एक डॉक्टर जर्मन महिला-भक्त से भेंट हुई, जो नारायणपुर, छत्तीसगढ़ का किसी अध्ययन पर भ्रमण कर चुकी थीं और एक अन्य जर्मन महिला-भक्त थीं, जिन्होंने स्वामीजी की पुस्तकों का जर्मन अनुवाद किया था और ८० वर्ष के ऊपर उम्र होने पर भी स्वयं कार चलाकर सम्मेलन में पहुँची थीं। दो भारतीय मूल के परिवार जो वर्षों पहले जर्मनी में बस चुके थे, उनसे भी भेंट हुई। तत्पश्चात् एक नया विचार आ गया कि हमलोग बर्लिन भी जायेंगे, जिसे स्वामी बाणेशानन्द जी ने प्रेमपूर्वक स्वीकार कर के निमन्त्रण भी दिया।

रामकृष्ण मिशन, बींडवाइड, जर्मनी में स्वामी बाणेशानन्द जी के साथ

स्वामी विवेकानन्द जी ने जर्मनी की यात्रा १८९६ में की थी। यहाँ उन्होंने पाल जैकब ड्यूसेन से भी भेंट की थी, जो कील विश्वविद्यालय में प्रसिद्ध प्रोफेसर थे। उस समय मैक्समूलर, शोफेनहॉवर और अन्य विद्वान, वेदान्त, उपनिषद आदि हिन्दू-शास्त्र के अध्ययन से जुड़े थे। १९३३ में यहाँ स्वामी यतीश्वरानन्द जी द्वारा एक केन्द्र स्थापित हुआ, जो कुछ कारणों से स्थायी नहीं रहा। पुनः १९५९ और १९९५ में भी भक्तों के प्रयास से गतिविधियाँ चलीं और २००४ में नियमित रूप से केन्द्र बन गया। तब से यह केन्द्र जर्मन और भारतीय दोनों भक्तों की आध्यात्मिक क्षुधा-पिपासा को तृप्त कर रहा है।[६]

स्वामी विवेकानन्द अपनी जर्मनी यात्रा में हाईडेलबर्ग विश्वविद्यालय गए थे और छात्रों के उत्साह को देखकर बहुत प्रसन्न हुए थे।[७] वहाँ स्वामीजी ने पहाड़ पर स्थित दुर्ग को भी जाकर देखा था। इसी यात्रा में वे बर्लिन भी गये थे और शहर की संरचना से प्रभावित हुए थे। हमलोग हाईडेलबर्ग विश्वविद्यालय के सामने से निकले और पहाड़ पर स्थित दुर्ग का भी भ्रमण किये, जहाँ से नेकर नदी का दृश्य पहाड़ियों से दिखता है। बर्लिन जाने की वैसे कोई पूर्व योजना नहीं थी, पर स्वामी बाणेशानन्द जी के निमन्त्रण से एक ऊर्जा मिल गयी और हम दोनो पिता-पुत्री ने बर्लिन अकेले जाने का साहस या दुस्साहस किया कहें। क्योंकि हमें जर्मन भाषा नहीं आती थी। सबेरे बस द्वारा ही हम हाईडेलबर्ग से रवाना हो गए। बस बहुत साफ थी, जिसमें शौचालय भी था और कॉफी पीने की मशीन भी थी, परन्तु बस-ड्राईवर माइक पर जो बोलता था, वह हमलोगों के पल्ले नहीं पड़ता था। यात्रा प्रारम्भ करने से पहले हमने स्वामी बाणेशानन्द जी को सूचना दी थी। उन्होंने पहुँचने का मार्ग समझा दिया था,

पर सुखद आश्चर्य हुआ, जब वे स्वयं बस स्टैंड पर मिले। उस दिन उनका कोई कार्यक्रम न होने के कारण उन्होंने हमें लेने आने का मन बना लिया, जिससे हम भटकें नहीं। वहाँ से भूमिगत रेलवे मार्ग से हमलोग बर्लिन रामकृष्ण मिशन पहुँच गए। पास में ही बड़े फुटबाल मैदान थे, जिसमें किसी दो क्लबों के बीच मैच चल रहा था। सुव्यवस्थित रिहायशी कॉलोनी के अंदर ही एक बंगला रामकृष्ण मिशन का केन्द्र है। संयोग से उस दिन हमारे अलावा कोई भी भक्त नहीं था, इसलिए स्वामीजी के साथ अकेले बातचीत करने का लम्बा समय मिल गया। अगले दिन प्रात: मंगल आरती के बाद हमलोग की भेंट श्रीलंका के दंपती से हुई, जो इस आश्रम से बहुत लम्बे समय से जुड़े हुए थे। स्वामीजी भी बहुत विस्तार से २००४ से अभी तक के अपने अनुभव बता रहे थे। बर्लिन आश्रम का टेरेस गार्डेन स्वामीजी ने दिखाया। स्वामीजी परिश्रमी हैं, इसलिये छोटे से टेरेस गार्डेन में साग-भाजी भी लगाते हैं। बर्लिन आश्रम की छत पर एक छोटा आधा कमरे जैसा है, उसमें मात्र एक व्यक्ति सो सकता है, वह परिव्राजक संन्यासियों को ध्यान-साधना के लिये बहुत अच्छा लगता है। स्वामीजी की आज्ञा से हमलोगों ने बर्लिन भ्रमण के दौरान बर्लिन वाल के हिस्से, पार्लियामेंट, वैक्स संग्रहालय आदि देखा और फिर ट्रेन द्वारा आश्रम के निकट रेलवे स्टेशन पहुँच गए। एक जगह तो शाम की अन्तिम ट्रेन छूटते-छूटते बची। क्योंकि हम को जर्मन भाषा नहीं आती थी। एक महिला ने अंग्रेजी में हम से गंतव्य पूछ कर मदद की। बर्लिन से वापस हाईडेलबर्ग बस में ही लौटे, तो समय का पता नहीं चला।

इसी यूरोप यात्रा में स्विटजरलैंड जाना भी पूर्व निर्धारित योजना थी, पर आरम्भ से ही वीसा वाली दिक्कत के कारण सब योजनाएँ समय और आपसी सहमति से पुन: बनानी पड़ीं। नई योजना में हमलोग लुसर्न होते हुए स्विटजरलैंड पहुँचे, परन्तु हमलोग जुन्गफ्रो और गिन्देर्वाल्ड के पास ही रहे। योजना ऐसी बनायी गयी कि खाने-पीने का सामान गाड़ी में लेकर चलें और ऐसे होटल में रुकें, जहाँ खाना बनाने हेतु किचन की सुविधाएँ दी जाती हैं, जिससे यात्री स्वयं अपना खाना बना सकें। ये भी अच्छा अनुभव था। होटल के पीछे ही हिमाच्छादित पर्वत दिखाई देता है, जो अपनी सुन्दरता दिन-रात बिखेरता रहता है। इस पर्वत को कमरों में अन्दर काँच की खिड़की से भी देखा जा सकता है।

समय की कमी के कारण सास फी, जहाँ ग्रैंड होटल सास फी वैले में स्वामी विवेकानन्द ठहरे थे और उनका स्मारक भी है,[८] हम नहीं देख सके। उसका वर्णन मैं संक्षेप में अपने माता-पिता और भाई से सुन चुका था, जो अपनी यात्रा में घूम चुके थे।

युगनायक विवेकानन्द में विस्तार से स्वामी विवेकानन्द की स्विटरजरलैंड यात्रा का वर्णन है, जहाँ वे जेनेवा, लुसर्न, आल्प्स पर्वत के फ्रांस सीमा पर माउंट ब्लाँ पर्वत, माउंट रोज़ा, चामोनीज ग्राम, लिटिल सेंट बर्नार्ड पर साधुओं का मठ देखने गए थे। जेनेवा में एक शिल्प-कला प्रदर्शनी के दौरान वे सेवियर दम्पती के साथ आकाश मार्ग की सैर करने बैलून पर भी चढ़े थे।[९]

जून २०१८ के प्रथम सप्ताह में हम भारत लौट आये। मेरी यह यात्रा अपने आप में अद्‌भुत, अतुलनीय अविस्मरणीय रही, क्योंकि रामकृष्ण मिशन के केन्द्रों से जुड़ने के कारण इसमें स्वामीजी के विदेशों में बसे भक्तों के प्रेम, भक्ति-भाव और विद्वत्ता से परिचय हुआ। ऐसा लगा जैसे स्वामी विवेकानन्द ने माँ सारदा के इस वेदान्तिक कथन का प्रयोग अपने जीवन में कर लिया था, 'इस संसार को अपना बनाना सीखो, यहाँ कोई भी पराया नहीं है, सब अपने ही हैं।''

रामकृष्ण मिशन के इन केन्द्रों में नियमित रूप से वेदान्त, संस्कृत, योग, ध्यान की शिक्षा दी जाती है और विभिन्न विषयों पर संन्यासियों द्वारा धार्मिक व्याख्यान, भक्त-सम्मेलन आयोजित होते हैं। फ्रांस केन्द्र के अध्यक्ष स्वामी वित्मोहानन्द जी के २०१९ में निर्वाण के पश्चात् वर्तमान में जर्मनी केन्द्र के प्रमुख पूज्य स्वामी बाणेशानन्द जी के मार्ग-दर्शन में यह केन्द्र संचालित हो रहा है।

फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैंड की इस यात्रा से मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया। स्वामी विवेकानन्द जी का विश्वव्यापी प्रभाव कितना अधिक है, यह रहस्य धीरे-धीरे प्रकट हो रहा है। 'हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता' स्वामी विवेकानन्द जी के परिपेक्ष्य में भी एकदम सही प्रतीत होता है। जहाँ से भी वे गुजरे एक नयी कथा बन गयी। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. वेबसाइट रामकृष्ण मिशन फ्रांस https://www.centre-vedantique.fr, **२.** युगनायक विवेकानन्द-३, पृ २८०, **३.** युगनायक विवेकानन्द-३ पृ २९०, **४.** रामकृष्ण मिशन फ्रांस द्वारा प्रकाशित आश्रम वर्णिका एवं रूट चार्ट, **५.** युगनायक विवेकानन्द खं. ३ पृ. २८६-२८७, **६.** वेबसाइट रामकृष्ण मिशन जर्मनी, https://www.vedanta-germany.org, **७.** युगनायक विवेकानन्द-२, पृ २६४, **८.** वही, खं. २, पृ. २६२, **९.** वही, खं. ३ पृ. २५८-२६०.

विकास और समृद्धि का स्त्रोत : शुभ संकल्प

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

यदि किसी घाटी अथवा किसी बड़े-से कमरे में हम कुछ बोलते हैं, तो वह आवाज वहाँ गूँजने लगती है और बार-बार हमें सुनाई पड़ती है। इसी प्रकार से हमारे मन में उठने वाले विचारों का भी हमारे जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मन में जैसे विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हीं के अनुरूप हमारे जीवन की वास्तविकता निर्मित होती है। इसलिए अनिवार्य है कि अच्छे विचारों को ही मन के पास भेजें। यजुर्वेद के चौंतीसवें अध्याय में छह मंत्र मिलते हैं, जिन्हें 'शिवसंकल्प सूक्त' के नाम से जाना जाता है। इन मंत्रों में मन की विशेषताएँ बतलाने के साथ-साथ हर मंत्र के अन्त में प्रार्थना की गई है – तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु अर्थात् हमारा मन शुभ संकल्पों वाला हो। शुभ संकल्प से तात्पर्य सकारात्मक सोच व कल्याणकारी संकल्प से ही है। आजकल जिस सकारात्मक सोच को विकसित करने की बात की जाती है, वे वास्तव में शुभ संकल्प ही होते हैं।

प्राय: कहा जाता है कि पुरुषार्थ से ही कार्य सिद्ध होते हैं, मन की इच्छा से नहीं। बिल्कुल ठीक बात है, लेकिन मनुष्य पुरुषार्थ कब करता है? वास्तविकता तो यह है कि मन की इच्छा के बिना पुरुषार्थ भी असम्भव है। मनुष्य में पुरुषार्थ अथवा प्रयास करने की इच्छा भी किसी-न-किसी भाव से ही उत्पन्न होती है और सभी भाव मन द्वारा उत्पन्न तथा संचालित होते हैं। अत: मन की उचित दशा अथवा सकारात्मक विचार ही पुरुषार्थ को सम्भव व उपयोगी बनाते हैं। पुरुषार्थ के लिए उत्प्रेरक तत्त्व मन ही है। कहा गया है कि मनुष्य वास्तव में वही है, जो उसकी सोच है। कार्य-सिद्धि अथवा सफलता या लक्ष्य-प्राप्ति पूर्ण रूप से पुरुषार्थ पर नहीं, मन की इच्छा पर निर्भर है, मन की इच्छा के सम्मुख कुछ भी असम्भव नहीं है। मन ही समृद्धि प्रदाता है और मन ही दरिद्रता के लिये उत्तरदायी होता है। एक घटना याद आ रही है।

एक व्यवसायी के चार पुत्र थे। सभी मिल-जुलकर रहते थे। व्यवसायी की मृत्यु के बाद पुत्र अलग-अलग हो गए और अपना अलग-अलग व्यवसाय करने लगे। चारों भाई अलग-अलग थे, लेकिन जब भी किसी संयुक्त पारिवारिक दायित्व को पूरा करने का अवसर आता, सभी मिलजुल कर उसे पूरा करते। सभी भाइयों का व्यवसाय अच्छा चल रहा था, लेकिन बड़े भाई का व्यवसाय सबसे अधिक अच्छा था। अलग होने के कुछ दिनों के बाद ही बड़ा भाई कहने लगा कि उसकी आय कम खर्च अधिक है। वह संयुक्त पारिवारिक दायित्वों से बचने के लिए कहने लगा कि हमारी आय में तो हमारा अपना खर्च ही कठिनाई से चल पाता है और संयुक्त पारिवारिक दायित्वों से स्वयं को अलग कर लिया। बाकी सभी भाइयों के परिवार सीमित थे, किन्तु समयानुसार बड़े भाई का परिवार बढ़ा, खर्च बढ़ा, जमीन-जायदाद बिकने लगी और सचमुच वे संकट में पड़ गये। ऐसी स्थिति आई कि परिवार का भरण-पोषण करना उनके लिये कठिन हो गया। ऐसा क्यों हुआ? ऐसा बड़े भाई की सोच के कारण। बड़ा भाई स्वार्थी हो गया था। उसकी सोच विकृत हो गई थी। विकृत सोच के कारण ही परिवार पर संकट आया। विकृत सोच कितने प्रकार से दुर्भाग्य को आमन्त्रित कर सकती है, हमारी सोच से परे है।

हमारी सोच का हमारी परिस्थितियों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। हम जैसा सोचते हैं, वे विचार उसी प्रकार के वातावरण का निर्माण करने लगते हैं। यदि हमारे विचार सकारात्मक और आशावादी होंगे, तो हमारे लिए अच्छी परिस्थितियाँ निर्मित होंगी और अच्छी परिस्थितियाँ हमारे जीवन में सुख-समृद्धि, आरोग्य और दीर्घायु लेकर आती हैं। वस्तुत: अपनी सोच द्वारा ही हम अपने भाग्य का निर्माण

शेष भाग पृष्ठ ५१० पर

सारगाछी की स्मृतियाँ (१०९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रथम द्वार (जिह्वा)

यह जो लाल होठों और दो धवल दन्त-पंक्तियों के बीच में छिपकर लाल मांस-खण्ड लपलपाता रहता है, इसे सबसे पहले पहचान लो। यह देह की पालक है, देह की रक्षक है, किन्तु यह प्रचण्ड रिश्वत खोर है। कड़ा पहरा नहीं रहने पर शत्रुओं को घर में घुसाकर देह-राज्य को विध्वंस करने में यह रंचमात्र भी बाधा नहीं देती। देखते हो न, कौन सा-ताजा है, कौन-सा सड़ा है, कौन-सा मिलावटी है और कौन-सा विशुद्ध है, इसका लेशमात्र भी विचार न करके यह बहुत स्वादिष्ट, बहुत मीठा होने से ही उसे निर्विचार भाव से भंडार (उदर) में जमा करती जाती है। इसीलिए तो घर-घर में कितनी अद्‌भुत प्रकार की पेट की बीमारियाँ सुनाई पड़ती हैं। कितनी ही अद्‌भुत औषधियों के विज्ञापन सामाचार पत्रों के पृष्ठों में छपते रहते हैं।

पाश्चात्य शिक्षारहित गाँवों में अभी भी स्वास्थ्यवर्धक कितनी ही बातों का प्रचार-प्रसार सुनाई पड़ता है –

१. कम भात में दूना बल।
अधिक भात से रसातल।।

२. आँत में तीता, दाँत में नून। (नमक)
पेट को भरो, बस तीन कोन।। (भाग)

३. कान में अरबी, आँख में तेल।
उसके निकट कभी जाए न वैद्य।।

(अर्थात् कम खाने से दूना बल मिलता है और अधिक खाने से बीमार हो जाता है। पेट में तीता और दाँत में नमक, और पेट को तीन भाग ही भरो। कान में अरबी, आँख पर तेल हो, तो उसके पास वैद्य नहीं जाता है।)

वैद्य जी उपदेश देते हैं – हितभुक्, मितभुक्, घृतभुक् होओ – अर्थात् हितकर पौष्टिक भोजन करो, कम जितना पच सके, उतना ही खाओ तथा घृत खाओ।

देश की स्थिति तो ठीक ही नहीं है। जो भी अच्छी चीजें उपलब्ध हैं, उनका उपयुक्त चयन करके खाने के अलावा और उपाय क्या है?

द्वितीय द्वार : कर्ण

प्रथम द्वार देखने में चारों ओर से कपाट (किवाड़) से बन्द है, किन्तु दूसरा द्वार दिन-रात खुला रहता है, गधे की ध्वनि से लेकर वीणा-ध्वनि तक कुछ भी इसके भीतर प्रविष्ट होने में कोई बाधा नहीं रहती।

देश में वीणा, मुरली तो चूल्हे में गई, सारा देश कोमल सुर या बेसुर में वृंदगान या रेकार्ड के संगीत से, माइक के माध्यम से आकाश-पाताल को मानो चकनाचूर कर रहा है। पूजा-पर्व आदि में पुलिस की सहायता से इस (ध्वनि-प्रदूषण) से आत्म-रक्षा करनी पड़ती है। इस समूहगीत को सुन-सुनकर मानों बच्चों का कान पक जा रहा है। आशंका होती है कि ये सब बड़े होकर गीत के उत्सवों में गधे-घोड़े लेकर आएँगे।

हे युवको ! यदि दोनों कानों को ठीक रखना चाहते हो, तो स्वयं ही अपना मार्ग देखो। यदि परीक्षा में इसकी सहायता नहीं पड़ेगी, तो इस विषय में और कौन तुम्हारी सहायता करेगा, बताओ तो?

तृतीय द्वार : नासिका

यह तीसरा द्वार दिन-रात खुला रहता है। जो शहर में जन्म लेते हैं, उनके इस खुले दरवाजे से, खुली या ढकी नालियों के सुवास को भीतर प्रविष्ट कराने हेतु पासपोर्ट या वीजा लेने का कोई नियम या कानून नहीं है। इसके बाद बसों-रिक्शों की चरणधूलि से दिन-रात ही गोधूलि-बेला लगती है, नासिक के दोनों सुरंगों (छिद्रों) के सुगन्ध-दुर्गन्ध युक्त धूल-मिट्टी-कणों से ढक जाने की सम्भावना रहती है।

सारे देश में अजीर्ण और दन्त शूल (दाँत का दर्द) होने के कारण चन्द्रवदन से कैसी प्राणघातक खुशबू (दुर्गन्ध)

निकलती है।

बड़े सौभाग्य से जिसके घर में देव-पूजा के समय देवताओं का आवागमन होता रहता है, वे प्रात:-सन्ध्या थोड़ी धूप-धूनी की सुगन्ध से नासिका-तर्पण करके धन्य होते हैं।

इसीलिए कहता हूँ, हे तरुणो ! अन्दर-बाहर ठाकुर को बैठाओ, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं दिखता है।

चतुर्थ द्वार : आँख

दो अद्‌भुत और हल्के किवाड़ों से दोनों आँखें खुलती और बन्द होती हैं ! निद्रा के समय दोनों कपाट बन्द रहते हैं, किन्तु आँखों को विश्राम नहीं, वे छोटे-छोटे बच्चों की तरह सिर को ढक लेती हैं, किन्तु इधर-उधर, उल्टे-पल्टे, लुक-छिपकर देखती रहती हैं।

दोनों आँखें उदास-चेहरे की तरह हैं, उनकी ज्वाला से हृदय के भीतर कुछ भी छिपाकर रखने का साहस नहीं होता ! वे संकेतों से सबके सामने सभी बातें फैलाने या प्रकट करने में निपुण हैं।

ऐसे जो द्रुतगति वाले दो नेत्र हैं, उन्हें हाथ-पैर बाँधकर पाठ्यपुस्तकों के कारागार में बंद रखकर बिल्कुल पंगु बना देना ही इस देश की शिक्षा है। तदुपरान्त कानों के पास रात-दिन एक वही गर्जना – 'पास करो, पास करो।' बेचारी आँख को इधर-उधर देखने का कहाँ समय है?

सारा जगत् स्वर्गीय सौन्दर्य से सुशोभित है। नीलाकाश में रवि-रश्मियों से उज्ज्वल मेघों के अंगों पर पुष्पों में, मासूम बच्चों के नेत्रों में, सुविस्तृत हरे-भरे मैंदानों में कैसी अलौकिक स्वर्गिक शोभा दिन-रात तरंगायित हो रही है, दोनों नेत्रों को सतेज नहीं बनाने से तो वे उसे पकड़ना या ग्रहण करना नहीं सीख पाते।

इसीलिए तो पोशाक द्वारा सजने-सँवरने की बहार में, विद्युत-प्रकाश की चमक में सिनेमा के चित्रों की थोड़ी शोभा देखकर आँखों को थोड़ी राहत मिलती है। हाय ! ऐसी महाशक्ति के अप्रयोग और दुरुपयोग का अभिशाप कैसा भयंकर है, इसे किशोरों को कौन समझाएगा?

हे किशोरगण ! आँखें खोलो, आँखें खोलो। क्योंकि प्रकृति दिन-रात पुकार रही है। स्वाधीन भारत में आँख खोलकर देखने में क्या बाधा है?

पंचम द्वार : त्वचा

'पंचम द्वार' कहते ही मैं चौंक गया। अन्दर-बाहर विराजमान सारे अंगों के ढक्कन को द्वार कहा जाता है? ऐसा भले ही न कहा जाए, किन्तु ऐसा देखा जाता है कि अन्य तरह का चेहरा, विपरीत प्रकार की चाल-चलनवाला कोई व्यक्ति यदि 'ब्राह्मण' के घर जन्म लेता है, तो उसे भी 'ब्राह्मण' कहते हैं। वैसे ही, ये भी इन्द्रियों के कुल में जन्म लेकर 'इन्द्रिय-द्वार' कहलाते हैं, भले ही स्वरूपत: खुला मैदान हैं। कोमल-कठोर, ठंडा-गरम का निर्णय करना ही इसका दैनन्दिन काम है।

रसना देवी मानो एक अति लज्जावती कोमलांगी वधू हैं, जो कपाट के ऊपर कपाट बन्द करके, घूँघट निकालकर रहती हैं। इनका पहला कपाट दो कोमल होंठ हैं, फिर दंत-प्रस्तरों की दो पंक्तियाँ हैं।

दोनों आँखों के कर्मों का अन्त नहीं है। इसीलिए आँखें बड़ी बहू की तरह कभी घूँघट उठाकर, तो कभी घूँघट निकालकर सब जगह घूमती-फिरती रहती हैं।

कान और नाक दोनों साँप-मेंढक, सियार की तरह दो-दो सुरंगों में निवास करते हैं।

किन्तु पंचम द्वार (त्वचा) के मन में लज्जा-घृणा-भय नहीं है। वह गर्व से सबके समक्ष, सुस्थान-कुस्थान सर्वत्र विराजमान है।

ऐसा तो होगा ही। क्योंकि ये ही तो घर के मालिक हैं और इन्हें देवालय से लेकर शौचालय तक की देखभाल करनी पड़ती है। देखते नहीं, एक जगह से पंचमेन्द्रिय को हटा देने से कैसा खून-खराबा, कैसा रक्तपात होने लगता है। इनके द्वारा साफ-सुथरा और सम्भालकर रखने से ही यह शरीर रूपी घर अच्छी तरह चल रहा है। इनके हट जाने पर कहाँ जाएगा रक्त, कहाँ जाएगा मांस और आँतों का सांसपिंजर शरीर। जिसका मन जहाँ चाहेगा, वहीं भागने लगेगा। तब कैसा संकट उत्पन्न हो जायेगा ! इसीलिए सभी को सम्भालकर रखने के लिये इसे इस तरह लज्जा-घृणा-भय छोड़कर रहना पड़ता है।

इस संसार में गुणों के पीछे-पीछे दोष घूमते रहते हैं, कभी-कभी तो बिल्कुल पास-पास ही रहते हैं। इसे न जानने से साधुगिरी करना प्राय: सर्वनाश का कारण बन जाता है। सभी ओर देखकर चलना ही तो अच्छा होता है।

ये जो सर्वरक्षक चर्म महाशय हैं, प्रारम्भ से ही इन्हें सम्भालकर नहीं रखने से इन्हें सर्वभक्षक होने में भी कोई

आपत्ति नहीं होती। मुझे ज्ञात है कि अचानक ऐसा सुनकर कोई इस बात पर विश्वास नहीं कर सकेगा। इसीलिए आँखों में उंगली डालकर एक-दो बातें बताऊँगा या दिखाऊँगा। शेष संकेतों से समझ लेना होगा।

पंचम द्वार (त्वचा) के सर्वांग में छिद्र हैं। भीतर के मल-मूत्र को ये चुपके से जिस तरह बाहर निकालते हैं, उसका कोई ठीक से पता नहीं पाता। तुम लोगों ने पसीने से तरबतर शरीर की गंध को कभी सूँघा है? राम ! राम !

यह कभी रक्तिमवर्ण का, कभी चमकदार सुनहले रंग का, तो कभी बिलकुल काले रंग का दिखाई पड़ता है। देखो, भीतर मल के भण्डार को छिपाकर रखने का कैसा फन्दा बना है !

इसकी एक महान इन्द्रजालवाली मोहिनी शक्ति है, जिसके नशे में पड़कर मनुष्य कंगाल हो जाता है। यह स्पर्श-सुख के प्रति आकर्षित करके किसी भी मनुष्य को निगल जाता है। युवकों की बात तो दूर ही है, कई समझदार लोग भी इस मोहिनी शक्ति का जादू का रहस्य नहीं जानते। 'चाम' (चर्म) मनुष्य को चमार बना सकता है। यह चर्मानन्द ही मरने के बाद चमगादड़ बनकर जन्म लेते हैं।

प्राचीन ऋषि सृष्टि के सभी रहस्य जानते थे। उन्होंने चर्मानन्द से सावधान रहने हेतु मनुष्य को कितना कुछ बताया है ! महर्षि पंतजलि कहते हैं – **'शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः।'** – अर्थात् शुचि-अशुचि का ज्ञान परिपक्व होने पर अपने ऊपर घृणा होती है और दूसरों के शरीर पर आकर्षण नहीं रह जाता। इतना न हो, तो भी स्पर्शसुख के भोग्य या भोक्ता होने की दुर्बलता से जो अपने को नहीं बचा सकता है, उसके जीवन में उन्नति की कोई आशा नहीं है, नहीं है, नहीं है !

अतएव, त्वगिन्द्रिय (त्वचा) के अतिरिक्त शेष चार ज्ञानेन्द्रियों की अनुभव शक्तियों को तीव्र बनाने का प्रयास करो। प्रयत्न करने पर मार्ग मिलता है।

'ज्ञानेन्द्रिय परिचय' नामक यह रचना समाप्त हुई। अब हम पुनः डायरी के तथ्यों पर वापस आते हैं। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५०७ का शेष भाग

करते हैं। सकारात्मक सोच द्वारा सौभाग्य को तथा नकारात्मक सोच द्वारा दुर्भाग्य को आमंत्रित कर हम स्वयं अपनी नियति के नियामक होते हैं। नकारात्मक सोच से उत्पन्न कार्यों के जो दुष्परिणाम होते हैं, उनसे हम सब परिचित होते हैं, फिर भी कई बार स्वार्थवश अथवा लोभवश हम अपने विचारों पर नियंत्रण खो बैठते हैं। क्योंकि हमारी इच्छाएँ हमारी सोच का परिणाम होती हैं। अतः हमें अपनी सोच को विकृत होने से बचाना चाहिए।

संतुलित सकारात्मक इच्छाएँ ही हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं, सफलता प्रदान करने में सहायक होती हैं। जैसी इच्छा, वैसा परिणाम होता है। यदि हमारी इच्छाएँ सात्त्विक नहीं हैं, तो परिणाम भी सात्त्विक नहीं होंगे। इसीलिये कई व्यक्ति तथाकथित पुरुषार्थ तो करते हैं, लेकिन फिर भी सफलता से कोसों दूर रहते हैं। तभी कामना की गई है – 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' अर्थात् मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो। मन तो संकल्प-विकल्पात्मक है। उसमें परस्पर विरोधी भाव उत्पन्न होते रहते हैं। अच्छे विचार आते हैं, तो बुरे विचार भी आते हैं। बुरे विचार आते हैं, तो उसके विरोधी विचार अर्थात् अच्छे विचार भी अवश्य उत्पन्न होते हैं। मन में उठनेवाले विचारों पर नियंत्रण द्वारा हम केवल अच्छे विचारों का चयन करके जीवन को उत्कृष्टता प्रदान कर सकते हैं। इसके लिए सदैव सतर्क रहना अनिवार्य है।

विचारों के प्रति सजग, सतर्क रहकर ही हम अच्छे विचारों का चुनाव करके अपने जीवन को स्वयं उन्नत बना सकते हैं। कुछ लोग जीवनभर दुखी बने रहते हैं, तो कुछ लोग सदैव प्रसन्न। ये सब भी मन के कारण ही होता है। अशुभ विचारों के कारण ही हम जीवनभर दुखी रहते हैं और सफलता हमसे दूर रहती है। बुरे विचारों का चुनाव चाहें हम स्वयं करें अथवा हमारी सजगता के अभाव में हो जाए, वे हमें अवनति के मार्ग पर ले जाते हैं। यदि मन प्रसन्न नहीं है, तो भौतिक सुख-सुविधाओं में भी आनन्द नहीं मिल सकता। मन के प्रसन्न होने पर आर्थिक समृद्धि अथवा भौतिक सुख-सुविधाओं में कमी होने पर भी आनन्द-ही-आनन्द है। सुख-समृद्धि तथा आनन्द दोनों ही प्राप्त करने के लिये मन की उचित दशा अथवा सकारात्मक भावधारा का निर्माण करना अनिवार्य है और उसके लिये मेरा मन शुभ संकल्पवाला हो, इससे अधिक कल्याणकारी विचार और क्या हो सकता है? ○○○

स्वामी विज्ञानानन्द जयन्ती विशेष

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर की सौ वर्ष की यात्रा : एक ऐतिहासिक अवलोकन

स्वामी आत्मश्रद्धानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर

हरा-भरा स्वच्छ स्थान

जैसे ही आप भारत के सबसे अधिक आबादी वाले शहर कानपुर से गुजरते हैं, शहर के व्यस्त गुमटी-५ इलाके में,

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर

जो अपने भीड़ भरे बाजार के लिये जाना जाता है, बीच में एक अवरोधक, व्यस्त रेलवे-क्रॉसिंग है। शहर के लोकप्रिय हनुमान मंदिर और एक गुरुद्वारा में प्रतिदिन असंख्य श्रद्धालु आते हैं। एक भीड़भाड़ वाला ग्रैंड ट्रंक रोड है और यदि आप कई दुकानों और छोटे होटलों के बीच एक छोटी गली में झाँकते हैं, तो गली के अन्त में आप देखेंगे, कुछ ऐसा जो निर्विवाद रूप से आपकी आँखों को आकर्षित करेगा – एक बड़े मोनोग्राम के साथ बड़े लोहे का दरवाजा, एक सीमेंट बीम पर दो जोड़ी कंक्रीट के खम्भों पर टिका है। जैसे ही आप परिसर में कदम रखते हैं, एक मंदिर जैसी संरचना दिखाई देती है, जो सुव्यवस्थित, सुसंरक्षित हरे-भरे मैदान से घिरी हुई है, दायीं ओर एक दो मंजिला साइनबोर्ड है, जिस पर 'पुस्तकालय और वाचनालय' तथा 'विवेकानन्द सभागार' लिखा हुआ है। एक अन्य संरचना है, लॉन की बायीं ओर एक साइन बोर्ड के साथ : 'धर्मार्थ चिकित्सालय'। शान्ति और पवित्रता की भावना के अलावा स्वच्छता और व्यवस्था की भावना प्रबल होती है। परिसर के प्रवेश द्वारा पर स्तंभित संरचना के ऊपर समतल सतह पर लिखा है – रामकृष्ण मिशन आश्रम, रामकृष्ण नगर, कानपुर। स्थापित : १९३१।

१९३१? वह द्वितीय विश्व युद्ध (१९३९-१९४५) शुरू होने से करीब आठ साल पहले की बात है ! जी हाँ, उसी समय इस शान्त स्थान को अपनी यात्रा आरम्भ करनी थी।

यात्रा का प्रारम्भ

वास्तव में इस कहानी का प्रारम्भ १९२१ में हुआ था, जब श्रीमाँ सारदा देवी से मंत्र-दीक्षा प्राप्त एक युवक बंगाल से कानपुर आया। कालान्तर में उस युवक ने संन्यास-व्रत भी ग्रहण किया। नेपालेश्वर बनर्जी नामक इस युवक का जन्म १८९५ में कोलकाता में हुआ था तथा वह स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से शामिल था। वह भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रसिद्ध क्रान्तिकारी संगठन अनुशीलन समिति का सदस्य था। समिति के सदस्य भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता के अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु हथियारों के प्रशिक्षण और क्रान्तिकारी प्रणाली में विश्वास करते थे। यद्यपि अनुशीलन समिति के कई सदस्य अपनी आध्यात्मिक पिपासा की शान्ति हेतु चुपचाप श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग संन्यासी शिष्यों से सहायता एवं मार्गदर्शन प्राप्त करने बेलूड़ मठ जाते थे। इनमें से कुछ युवक बाद में रामकृष्ण संघ में संन्यासी हो गये तथा उन्होंने आदर्श आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए 'शिवज्ञान से जीव सेवा' अर्थात् मनुष्य को ईश्वर समझकर उनकी सेवा की। नेपालेश्वर भी ऐसा ही एक क्रान्तिकारी साधक था। ब्रिटिश पुलिस उसे खोज रही है, जब यह बात स्वामी शिवानन्द और स्वामी प्रेमानन्द को पता चली,

तो उन्होंने उसे वाराणसी जाने की सलाह दी। नेपालेश्वर उनके सुझाव पर वाराणसी चला आया और गेरुआ वस्त्र पहन कर काशी की गलियों में घूमने लगा तथा पुलिस की पकड़ से बचने के लिए कुछ सामान्य कार्य कर जीवन-निर्वाह करने लगा।

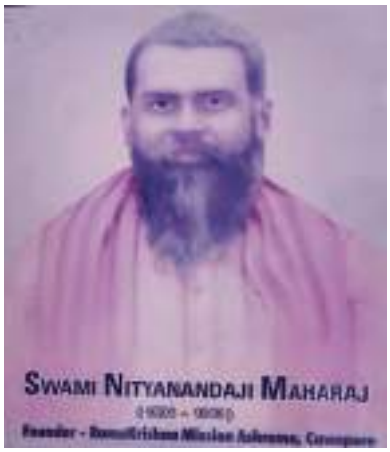

श्रीरामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द की शिक्षाओं से वे पूर्व-परिचित थे तथा उनको उससे बहुत प्रेरणा भी मिली थी। उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासा उन्हें अन्त में श्रीमाँ सारदा देवी के पास ले गई, जो १९१८ में वाराणसी आई हुईं थीं। श्रीमाँ ने उन्हें मंत्र-दीक्षा दी और यह जानकर कि पुलिस उनका पीछा कर रही है, उन्होंने उन्हें वाराणसी छोड़ने का परामर्श दिया। तब वे २४ वर्ष के थे। उन्होंने श्रीमाँ के परामर्श को गंभीरता से लिया और हिमालय के गढ़वाल क्षेत्र में चले गए। हिमालय में कुछ समय बिताने के बाद वे कानपुर आ गये, जो एक विकासशील शहर तथा अपनी निडरता एवं औद्योगिक विकास हेतु प्रसिद्ध है।

यहाँ उनकी भेंट डॉ. सुरेन्द्रनाथ सेन से हुई, जो एक सफल डॉक्टर के अलावा कानपुर में सामाजिक रूप से बहुत सक्रिय और प्रसिद्ध थे। डॉ. सेन ने बंग साहित्य परिषद की स्थापना की थी और एक प्राथमिक विद्यालय भी शुरू किया था। डॉ. सेन ने युवा नेपालेश्वर को अपने विद्यालय में एक शिक्षक के रूप में सेवा हेतु प्रस्ताव दिया। कोलकाता में रहते हुए नेपालेश्वर ने बंगाली साहित्य में साहित्य भूषण की उपाधि प्राप्त की थी, उन्होंने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा विद्यालय में पढ़ाने लगे और वे शीघ्र ही अपने आकर्षक और प्रेरक चरित्र के द्वारा छात्रों में लोकप्रिय हो गए। छात्रों और अन्य लोग उन्हें प्रेम से 'मास्टर मोशाई' कहते थे।

रामकृष्ण सेवा सदन की स्थापना

१९२०-१९२१ में, नेपालेश्वर ने अपने व्यक्तित्व और बातचीत से कई युवाओं को उच्च आदर्शों की ओर आकर्षित किया। उन्होंने शीघ्र ही स्थानीय युवाओं के एक समूह को संगठित किया, जो नियमित रूप से मिलते एवं ध्यान, प्रार्थना तथा सत्साहित्य को पढ़ने के अलावा आध्यात्मिक और सामाजिक विचारों पर चर्चा करते थे। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द और अन्य विचारकों जैसे सिस्टर निवेदिता, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, बुकर टी. वाशिंगटन (प्रसिद्ध अश्वेत सुधारक और अमेरिका के शिक्षाविद्) तथा अन्य विभिन्न विचारकों और पुस्तकों को पढ़ा और चर्चा किया। समय के साथ श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों को समर्पित संगठन 'रामकृष्ण सेवा सदन' की स्थापना हुई। यह कानपुर में रामकृष्ण मिशन के गतिविधियों का अनौपचारिक प्रारम्भ था।

सेवा सदन की गतिविधियाँ बढ़ने लगीं। इसके सदस्य श्रीरामकृष्ण देव के जन्म-महोत्सव के अतिरिक्त दैनिक प्रात: और संध्या की प्रार्थना एवं भजन आयोजित करते थे। उन्होंने छात्रों के लिए एक छात्रावास, एक व्यायामशाला (अखाड़ा), एक माध्यमिक विद्यालय और क्षेत्र के गरीब और पीड़ित लोगों के इलाज के लिये चिकित्सा सुविधाओं की स्थापना की। नेपालेश्वर ने एक होम्योपैथिक चिकित्सालय आरम्भ किया और बाद में जब कुछ एलोपैथिक डॉक्टर अपनी सेवाएँ देने को सहमत हुए, तो उसमें एलोपैथिक विभाग भी जोड़ दिया गया। १९२४ तक चीजों का बहुत विस्तार हुआ। एक सलाहकार समिति का भी गठन किया गया, जिसमें शहर के कई प्रतिष्ठित नागरिक इसके पदाधिकारी थे। नव स्थापित संगठन की सभी गतिविधियों को आम जनता से उत्साहजनक प्रतिक्रिया मिली। विद्यालय-सह-छात्रावास का नाम 'शारदा विद्यापीठ' और छात्रावास को 'ब्रह्मानन्द छात्रावास' कहा जाता था। एक समय ब्रह्मानन्द छात्रावास में लगभग सौ छात्र थे। रविवार की सुबह छात्रावास के छात्र शहर के विभिन्न क्षेत्रों से मुष्टिभिक्षा लेने जाते थे और जो इकट्ठा होता, उसे गरीबों और अभावग्रस्तों में बाँट देते थे।

सेवा सदन द्वारा संचालित व्यायामशाला ने भी कई युवा बॉडी-बिल्डरों और पहलवानों को आकर्षित किया, जो वहाँ की सुविधाओं से काफी सन्तुष्ट थे। सेवा सदन ने उन्नाव में एक ग्रामीण-विद्यालय भी चलाया, जो एक कस्बा (अब एक जिला) है, जो कानपुर से लखनऊ की सड़क पर लगभग १५ किमी दूर है।

लेकिन, रामकृष्ण सेवा सदन का अपना कोई स्थान नहीं था। इसने अपनी गतिविधियों को किराए के भवनों में

संचालित किया और कानपुर शहर में विभिन्न स्थानों पर स्थनांतरित करना पड़ा जैसे कि कराची-खाना, रज़ा मंजिल, अफ़ीम कोठी, अनवरगंज, इत्यादि। धन की कमी हमेशा एक समस्या थी और इसलिए उन्होंने ऐसे परिसर को किराए पर लिया, जहाँ किराया कम था। उन्हें कई कठिनाइयों और दुर्दिन से गुजरना पड़ा।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर

१९३१ में, 'रामकृष्ण सेवा सदन' रामकृष्ण संघ, बेलूड़ मठ से सम्बद्ध हो गया और इसका नाम बदलकर 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर' कर दिया गया। इस अवधि के दौरान श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी अभयानन्द (भरत महाराज) जी आश्रम आये। परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द के एक शिष्य, स्वामी शुद्धानन्दजी भी कानपुर आए और उन्होंने अनेक व्याख्यान दिये। उन्होंने लोगों से बातचीत की तथा उन्हें श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के संदेशों के प्रसार हेतु प्रेरित किया। धीरे-धीरे चीजें बेहतर होनें लगीं। कानपुर आश्रम द्वारा भूमि के लिए प्रदत्त पुराने आवेदन को कानपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने नाटकीय ढंग से स्वीकृति दे दी तथा गैंड ट्रंक रोड के पास गुमटी-५ में १.५ एकड़ भू-खण्ड आश्रम को पट्टे पर दिया गया। आश्रम के कई शुभचिन्तकों ने जमीन पाने के लिए कड़ा परिश्रम किया और बाद में भवनों के निर्माण हेतु धन एकत्र करने में सहायता की।

इसी बीच ब्रह्मचर्य जीवन-यापन कर रहे नेपालेश्वर ने संन्यास-व्रत लेने का निश्चय किया। उन्हें रामकृष्ण संघ के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी ने संन्यास-दीक्षा दी और उन्हें स्वामी नित्यानन्द नाम दिया। वे रामकृष्ण संघ के अधिकृत सदस्य नहीं थे, किन्तु १९४३ में हरिद्वार के रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, कनखल में देह-त्याग तक श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावानुरूप सेवा करते रहे। उनकी अन्त:प्रेरणा कठोर परिश्रम के बिना कानपुर केन्द्र की स्थापना एवं विकास असम्भव था।

स्वामी चिदात्मानन्द

कानपुर आश्रम के इन प्रारम्भिक दिनों को याद करते हुए, अलोपी महाराज या स्वामी चिदात्मानन्द (१९१०-१९७५) का नाम अवश्य उल्लेखनीय है, जो एक युवक के रूप में आश्रम में आए थे। वे छात्रावास के प्रारम्भिक सदस्य थे और यहाँ रहकर उन्होंने अपनी पढ़ाई पूरी की, रामकृष्ण संघ में ब्रह्मचारी के रूप में सम्मिलित हुए तथा बाद में आश्रम के सदस्य और फिर इसके सचिव बने। वे अद्वैत आश्रम, मायावती, हिमालय से प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका, प्रबुद्ध भारत के सम्पादक थे और १९७५ में अपने निधन तक रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-महासचिवों में से एक थे। कानपुर के साथ अपने तीन दशकों से अधिक सहयोग के दौरान स्वामी चिदात्मानन्द जी ने संस्था के विकास में कई प्रकार से बड़े योगदान दिए।

कानपुर रेलवे स्टेशन पर स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज

कानपुर आश्रम स्वामी नित्यानन्द और स्वामी चिदात्मानन्द के साथ-साथ अन्य संन्यासियों, भक्तों और शुभचिन्तकों का इसकी प्रारम्भिक अवधि में इसके विकास और इसे सबलता से स्थापित करने के लिए ऋणी है।

स्वामी विज्ञानानन्द की कानपुर यात्रा

कानपुर केन्द्र के संन्यासियों और भक्तों के हार्दिक निमन्त्रण पर, स्वामी विज्ञानानन्द जी, जो श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग संन्यासी-शिष्य तथा रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष थे, २५ अक्तूबर, १९३६ को कानपुर आए। रामकृष्ण मिशन कानपुर के लिये यह एक ऐतिहासिक क्षण था ! उन्हें नए अधिगृहीत भूमि पर नए प्रार्थना कक्ष एवं मंदिर की नींव रखनी थी। प्रसन्नता की बात यह है कि १९३६ श्रीरामकृष्ण के जन्म का शताब्दी वर्ष था।

वे प्रयागराज से कालका एक्सप्रेस से कानपुर आये थे। रेलगाड़ी कानपुर सेन्ट्रल प्लेटफॉर्म नम्बर ९ पर पहुँची, जबकि स्वागत समिति के सदस्य स्टेशन के सामने के बरामदे

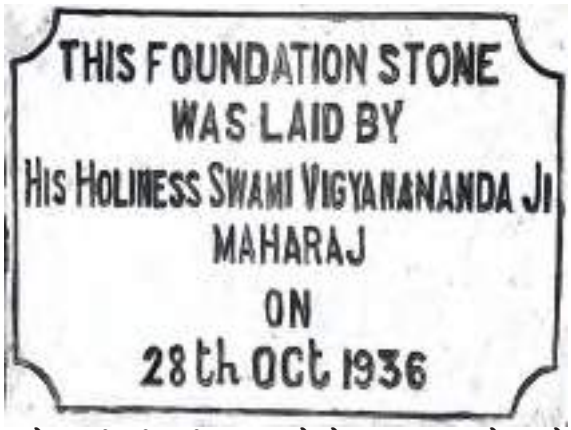

पर रेलगाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। विज्ञानानन्द के लम्बे कद और आध्यात्मिक रूप ने स्टेशन पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। स्वागत समिति ने सम्मानित साधु के साथ एक समूह चित्र लेने के लिए एक फोटग्राफर को किराये पर रखा था। चित्र में स्वामी विज्ञानानन्द स्वागत समिति के सदस्यों और प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ बीच में खड़े थे। अपने तरह का अनूठा इस ऐतिहासिक चित्र की एक प्रति अब कानपुर रेलवे स्टेशन के प्रमुख के कार्यालय की शोभा बढ़ा रही है। उस क्षण की पवित्रता के साथ-साथ रेलवे के लिए इसका वास्तव में अभिलेखीय मूल्य है।

स्वामी विज्ञानानन्द श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग संन्यासी शिष्य थे और बाद में रामकृष्ण संघ के चौथे अध्यक्ष भी थे। जब वे कानपुर आए, तो उन्हें आगा कोठी क्षेत्र में आश्रम के किराए के परिसर में ठहराया गया, जहाँ वे छह दिनों तक रहे। वे २८ अक्तूबर, १९३६ को कानपुर आश्रम के वर्तमान स्थल पर आए और नए भवन की नींव रखी, जिसमें मन्दिर, साधु-निवास और छात्रावास था। जमीन समतल नहीं थी और बीच में एक टीला था। कालान्तर में चारों ओर से मिट्टी डालकर इसे समतल कर दिया गया। कानपुर प्रवास के दौरान स्वामी विज्ञानानन्द ने आठ लोगों को मंत्र दीक्षा दी। हालाँकि यह उल्लिखित नहीं है कि उन्होंने दीक्षा कहाँ दी, नए परिसर में या आगा कोठी क्षेत्र में किराए के परिसर में, लेकिन यह उल्लेख है कि उन्होंने जप करने के बाद एक-एक रूद्राक्ष की माला दी। उन्होंने साधक को दीक्षा देते समय न केवल मंत्र का उच्चारण करवाया, बल्कि एक कागज के टुकड़े पर मंत्र भी लिखा और उनमें से प्रत्येक को दिया। वास्तव में यह एक असाधारण, विलक्षण बात है !

मैं रामजी का बन्दर हूँ

अपने कानपुर प्रवास के समय स्वामी विज्ञानानन्द जी अधिकांश अपने कमरे में ही रहते थे, लेकिन संध्या-आरती से पहले भक्तों, आंगतुकों और छात्रों से मिलते थे। वे मुख्य रूप से श्रीरामचन्द्रजी और हनुमानजी के बारे में चर्चा करते थे। वे हँसते हुए लड़कों से कहते, जो उन्हें सुनने के लिए एकत्र हुए थे, 'तुम लोग मुझे क्या देखते हो? मैं रामजी का बन्दर हूँ।' हनुमानजी के जीवन और चरित्र पर चर्चा करते हुए वे बन्दरों जैसी मुख-मुद्रा बनाते थे ! उन्होंने कोई व्याख्यान नहीं दिया और न ही किसी दार्शनिक चर्चा में रुचि रखते थे। उदाहरण के लिये, जब स्वामी विवेकानन्द की पुस्तकों के पढ़नेवाले एक भक्त ने उनसे कुंडलिनी शक्ति के बारे में पूछा, तो उन्होंने इस प्रश्न की उपेक्षा कर दी और सबसे श्रीरामकृष्ण में भक्ति रखने को कहा।

आश्रम के निवासियों के साथ स्वामी विज्ञानानन्द का एक चित्र लिया गया था। वे कुर्सी पर बैठे दिखाई दे रहे हैं, उनकी बायीं ओर अलोपी महाराज एक छात्र के रूप में हैं और नेपालेश्वर महाराज उनके श्रीचरणों में हैं। चित्र में उपस्थित अन्य लोगों में से केवल एक बसन्त बनर्जी की पहचान की गई है।

स्वामी विज्ञानानन्द जी महाराज, अलोपी महाराज, नेपालेश्वर महाराज और बसन्त बनर्जी

छह दिन कानपुर में रहने के बाद वे ट्रेन से प्रयागराज लौट आए। ऐसा कहा जाता है कि जब उन्हें ट्रेन में चढ़ने के लिए कानपुर सेन्ट्रल स्टेशन जाना था, तो एक धनी भक्त की कार की व्यवस्था की गई थी, लेकिन महाराज के अपने ढंग थे। वे कार आने से पहले ही किराये की घोड़ा-गाड़ी (टमटम/एक्का) से स्टेशन चले गए ! कहा जाता है कि परमहंस सामाजिक मानदण्डों और शिष्टाचारों के नियमों से नहीं बाँधे जा सकते, वे सभी लौकिक बन्धनों से परे होते हैं। **(क्रमशः)**

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (४)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

बैंगलोर,

२५ अगस्त, १९६४

प्रिय अशोक,

तुम्हारे ८ जून और ४ अगस्त के पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। सभी समाचारों के लिए धन्यवाद।

पहले की तरह चाहते हुए भी मैं पत्र नहीं लिख पाता हूँ। इस देरी की ओर ध्यान मत देना।

तुम्हें महेश से हमारे सारे समाचार मिल जाएँगे। उम्र के अनुसार मैं काफी अच्छा हूँ। कई महीनों से पेशाब में शुगर नहीं है। हाल ही में मेरी ब्लड शुगर (खून में शक्कर) की जाँच पुन: की गई थी। वह ८% थी – ७२% खाली पेट और १२२% खाने के लगभग डेढ़ घंटे बाद। फिर भी मैं सावधान रहना चाहता हूँ। अत: मैं मिठाईयाँ नहीं खाना चाहता।

दशहरा के समय तुम्हारा स्वागत है। कुछ छात्र घर जायेंगे और विद्या मन्दिर में तुम्हारे लिये स्थान होगा।

परमात्मा तुम सभी को सभी प्रकार से स्वस्थ और प्रसन्न रखें।

पुनश्च : तुम्हारे पिताजी अभी बैंगलोर में हैं। उन्होंने सूचित किया है कि वे मुझसे मिलने एक-दो दिन में आयेंगे। सोच रहा हूँ कि तुम्हारे भविष्य के बारे में मैं उनसे क्या कहूँगा।

प्रभु पदाश्रित

स्वामी यतीश्वरानन्द

बैंगलोर

२५-९-६४

प्रिय अशोक,

तुम्हारा ३ सितम्बर का पत्र यथासमय प्राप्त हुआ। सुविधानुसार बैंगलोर आओ। तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे यहाँ पहुँचने की तारीख और समय सूचित करना। आज रवि का पत्र प्राप्त हुआ। तुम्हारा उसे दिया वह सुझाव कि वह तुम्हारे इन्दौर लौटने के बाद यहाँ आये, अच्छा है। आश्रम देखनेवाला वहाँ कोई होना चाहिए।

श्री सदानन्द शुक्ला ने अचानक बिना सूचना के यहाँ पहुँचकर बहुत असुविधा पैदा की। अब उनकी पत्नी आदि भी पहुँच गये हैं और वे शान्त हैं। अगर भगवान श्रीरामकृष्ण की इच्छा हुई, तो सम्भवत: २९ ता. को उनकी दीक्षा हो जाएगी।

जहाँ तक दूसरे दीक्षार्थियों का प्रश्न है, कृपया यह देख लेना कि उन्हें श्रीरामकृष्ण की जीवनी और उपदेशों के बारे में पूरी जानकारी है। यदि सब ठीक रहा, तो वे दीक्षा के लिये बैंगलोर ११ अक्तूबर तक आ सकते हैं। १३ अक्तूबर को दीक्षा होने की बात है, पर सब कुछ श्रीगुरु महाराज पर निर्भर है। आनेवाले ऊनी कपड़े साथ लायें और उन्हें होटल में रहना पड़ सकता है।

आशा है तुम्हारा स्वस्थ्य अच्छा है। मैं इतना स्वस्थ नहीं हूँ, जितना होना चाहिए। अत: मेरे नागपुर जाने की कोई आशा नहीं है। पर अभी मेरे बारे में चिन्ता की कोई बात नहीं है। अक्तूबर के अन्त में मैं बेलूड़ मठ जा सकता हूँ। प्रभु की इच्छा ही पूर्ण होगी।

वे तुम सभी पर सभी प्रकार से कृपा करें,

प्रभु पदाश्रित

स्वामी यतीश्वरानन्द

प्रिय अशोक,

तुम्हारा २५ मई का पत्र यथासमय प्राप्त हुआ था।

मुझे यह जानकर बहुत दु:ख हुआ कि तुम्हें amoebic dysentury के कारण कष्ट भोगना पड़ा है। कुछ दिनों पूर्व तुम्हारे पूज्य पिता डॉ. बोर्डिया बैंगलोर आये थे और आश्रम आये थे। उन्होंने भी मुझे तुम्हारी बीमारी की बात कही। उन्होंने कहा कि जन्म से ही तुम्हारा शरीर दुर्बल है। आशा है, तुम अब पहले से अच्छे हो। तुम्हारे वजन में वृद्धि अच्छा लक्षण है। अपने स्वास्थ्य की पूरी देखभाल करो। सम्भवत: किसी विशेषज्ञ के निर्देशन में शारीरिक व्यायाम से तुम्हें लाभ होगा और अपने भोजन के सम्बन्ध में सावधानी बरतना।

जैसा तुमने स्वयं लिखा है, तुम्हारी अस्वस्थता तुम्हारे रामकृष्ण मिशन में पदार्पण में एक बाधास्वरूप है। कम से कम कुछ मात्रा में स्वस्थ हुए बिना कोई भी Medical Test – स्वास्थ्य की परीक्षा में पास नहीं हो सकता और ना ही त्याग और सेवा के जीवन की कठोरता को झेल सकता है और यदि तुम बलपूर्वक संसार-त्याग करो, तो तुम्हारे मानसिक संघर्ष अधिक हो जाएँगे। शरीर की दुर्बलता से मन भी दुर्बल हो जाता है। पेट की बीमारियाँ कभी-कभी निम्न केन्द्रों को उत्तेजित करती हैं, जिससे अपवित्र विचार मन में उठते हैं। पर उनकी बहुत अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। बार-बार पवित्र और उच्चतर विचारों के द्वारा उन पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

संन्यास अधिकांश लोगों के लिए नहीं है। उन्हें धीरे-धीरे चित्त को शुद्ध करने के लिए वैवाहिक जीवन से गुजरना और अन्त में स्वयं को परमात्मा को समर्पित करना पड़ता है। वैवाहिक जीवन में कोई हानि नहीं है। यही नहीं, नब्बे प्रतिशत से अधिक आधुनिक संसार के स्त्री-पुरुषों के लिए यह परम आवश्यक है।

रामकृष्ण मिशन में योगदान करने का तुम्हारा विचार बहुत अच्छा है, लेकिन तुम्हें कभी भी जल्दबाजी में कोई अप्रत्याशित कदम नहीं लेना चाहिए। सामान्य पहाड़ी चढ़ने में असमर्थ हों, तो हमें हिमाच्छादित शिखरों पर चढ़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। यदि मेरा शरीर दुर्बल हो और मन बार-बार उत्तेजित, चंचल हो जाए तो मुझे निश्चित रूप से 'क्षुरस्य धारा' के पथ का चयन नहीं करना चाहिए। पर, तुम्हीं अपने श्रेष्ठ निर्णायक हो। यदि वैराग्य की अग्नि प्रबल हो, तो कोई भी उसे बुझा नहीं सकता।

यदि तुम इन्हौर में रहना नहीं चाहो, तो आसानी से अन्यत्र नौकरी प्राप्त कर सकते हो। तुम विदेशों में भी जा सकते हो, जहाँ तुम धन कमाने के साथ ही साथ ज्ञानार्जन भी कर सकते हो। अपने भविष्य का निर्णय अपने पूज्य पिताजी के साथ परामर्श करके करो, जो तुम्हें बहुत प्यार ही नहीं करते बल्कि तुम्हें गहराई से और पूरी तरह समझते हैं।

इस पत्र को मेरी अपने हाथ से लिखने की इच्छा थी। लेकिन दुर्भाग्य है कि पिछले लगभग १५ दिनों में मेरा स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया है। लगातार हिचकियाँ, एसिड की उल्टियाँ, बुखार, पतले दस्त आदि रोग एक के बाद एक मुझे हो रहे हैं। इन सभी से मेरी पीठ बहुत दुर्बल हो गई है। मैं अभी भी ठीक से चल नहीं पाता हूँ और दैनन्दिन नियम पालन नहीं कर पा रहा हूँ। पर चिन्ता की कोई बात नहीं है। डॉक्टरों ने मेरे हृदय, गुर्दे, ब्लड प्रेशर आदि उम्र के अनुसार ठीक ही पाये हैं।

मैं कमरे से बाहर आकर अधिक समय तक बैठ नहीं पाता हूँ, अत: मैंने सभी भक्तों को मुझे मिलने के लिए बैंगलोर आने से माना किया है।

यदि तुम जैसे लोग इतनी दूर से आओ और मैं कुछ समय भी बात नहीं कर पाऊँ, तो मुझे बहुत खराब लगेगा। अत: अभी बैंगलोर मत आओ। मैं लगभग अक्तूबर तक बैंगलोर से बाहर नहीं जाना चाहता। प्रभु की इच्छा ही पूर्ण होगी।

प्रभु तुम सभी पर सभी प्रकार से कृपा करें।

तुम्हारा ही प्रभु पदाश्रित
स्वामी यतीश्वरानन्द

(क्रमश:)

कविता

आदिशक्ति मेरी माँ काली

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

मेरा मन प्रतिपल रमता है, माँ काली के पद कमलों में ।
उनके नित चिन्तन से मिलता, परमशान्ति भी विपद क्षणों में।।
आदि शक्ति मेरी माँ काली, परमदयामयी सब दुखहारिणी ।
ऋद्धि-सिद्धि सद्बुद्धि प्रदायिनी, प्रणत हुआ तेरे चरणों में ।।
माँ तुम हो सब जग की माता, विमल भक्त की तुम प्रदाता ।
तेरे नित्य पूजा अर्चन से, दिव्य भाव आते हैं मन में ।।
कृपा से माँ देवी भगवती, सुर-नर पूजित अनुपम शक्ति ।
तेरे श्रीचरणों को भजकर, धन्य हुआ जीवन इस जग में ।।

गीतातत्त्व-चिन्तन (५)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १०वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी।।२१।।

अहम् (मैं) आदित्यानाम् विष्णु: (आदित्यों में विष्णु) ज्योतिषाम् अंशुमान् (ज्योतियों में प्रकाशवाला) रवि: अस्मि (सूर्य हूँ) अहम् मरूताम् मरीचि: (मैं मरुतों में मरीचि) नक्षत्राणाम् शशी (और नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ)।

''मैं आदित्यों में विष्णु, ज्योतियों में प्रकाशवाला सूर्य हूँ, मैं मरुतों में मरीचि और नक्षत्रों में चन्द्रमा हूँ।''

आदित्य का तात्पर्य इस सूर्य से नहीं है। सूर्यलोक में जो द्वादश आदित्य हैं, उनमें मैं विष्णु नाम का आदित्य हूँ। विष्णु का अर्थ होता है, जो व्यापक हो। उसको विष्णु कहते हैं। वह चिज्ज्योति जो सबमें है, वह चैतन्य सत्ता सबमें है, इन द्वादश आदित्यों में मैं विष्णु हूँ। भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रधानता है। प्रधानता किसकी दृष्टि से? हमारी दृष्टि से। भगवान इसके बाद कहते हैं – **ज्योतिषां रविरंशुमान्** – भिन्न-भिन्न ज्योतिवाले जो पदार्थ हैं, उन ज्योतिवाले पदार्थों में मैं सूर्य हूँ। अब कोई कहेगा, भगवान कृष्ण को विज्ञान की बात नहीं मालूम थी। इसलिए विज्ञान तो आज कहता है कि यह सौरजगत्, इस सूर्यजगत् से भी बड़े-बड़े नक्षत्र विद्यमान हैं। वैज्ञानिक कहता है कि सूर्य से भी बड़े-बड़े नक्षत्र हैं। भगवान कृष्ण को तो इन बातों की जानकारी नहीं थी। उन्हें तो बस एक ही सूर्य दिखाई देता था, इसलिए कह दिया कि जितने भी ज्योतिपिण्ड हैं, उनमें मैं सूर्य हूँ। इसके पीछे का तात्पर्य क्या है? हम मनुष्य भिन्न-भिन्न ज्योतिष्मान पदार्थों में क्या देखते हैं? हम मानते हैं कि इस सूर्य से कई गुना बड़े-बड़े और भी सूर्य हैं और भी तारे-नक्षत्रादि हैं,

पर इस मर्त्यलोक में सबसे अधिक प्रकाश हमारी आँखों के सामने किसका मालूम पड़ता है? कहते हैं – सूर्य का। भगवान ने इसीलिए यह उदाहरण दिया। भगवान कह रहे हैं कि जितने भी ज्योतिष्मान पदार्थ हैं, उनमें मैं सूर्य के रूप में विद्यमान हूँ। सूर्य मेरा रूप है। मुझे तू सूर्य मान ले। जो भी प्रधान तत्त्व हैं, एक-एक दल के जो उसमें के नेता हैं, उनमें जो प्रधान हैं, भगवान कहते हैं कि यह प्रधान तत्त्व मैं ही हूँ। **मरीचिर्मरुतामस्मि** – उनचास मरुत की बात पुराणों और वेदों में आती है। उसके पीछे पौराणिक गाथा है। इतनी-सी बात है कि इन्द्र असुरों को बार-बार हराते थे। असुरों की माता अदिति के मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसने प्रार्थना की कि इन्द्र को मारनेवाला बेटा मुझे प्राप्त हो। क्योंकि इन्द्र के कारण ही मेरे बेटे मारे जाते हैं। इसीलिए ऐसा बेटा मुझे प्राप्त हो जो इन्द्र का ही संहार कर दे। अपने पति कश्यप से वह इस तरह प्रार्थना करती है – देव ! आप तो सर्वसमर्थ हैं, आप मुझे इस प्रकार का पुत्र दीजिए। कश्यप पुत्र देते हैं। वे कहते हैं – एक वर्ष तुम नियम से, पावित्र्य से रहो, किसी प्रकार मन में असत् कल्पना न हो। इस ढंग से तुम निवास करना। मैं तुम्हें पुत्र का वरदान देकर जाता हूँ। उन्होंने अदिति को पुत्र का वरदान दिया। इधर अदिति नियम पालन करती रही। उस नियम में इन्द्र विघ्न डालने लगा, क्योंकि उसे मालूम हो गया है कि ऐसा वरदान मिला है। वह छद्म वेश में आया और सेवा करने लगा। अदिति की बड़ी सेवा की, जिससे वह इन्द्र पर प्रसन्न हो जाती है और अधिक निकटता देती है। इन्द्र सेवा तो करता है, पर चाहता है कि किसी प्रकार अपवित्रता अदिति के जीवन में इस समय हो जाए। फिर कथा चलती है कि

कैसे अदिति एक दिन सावधान नहीं थी, तो उसके गर्भ में इन्द्र प्रवेश कर जाता है और उस गर्भ में पल रहे बच्चे के सात टुकड़े कर देता है। फिर ये सातों टुकड़े रोने-चिल्लाने लगते हैं। तो इन्द्र पुन: एक-एक के सात-सात टुकड़े कर देता है। उनचास टुकड़े जब रोने लगे, तो सोई हुई अदिति का ध्यान खण्डित हुआ। इन्द्र गर्भ से बाहर निकल आता है और हाथ जोड़कर कहता है – मैंने ही तुम्हारे गर्भ के भीतर जाकर टुकड़े-टुकड़े किये हैं। माता, मैं इन्द्र हूँ, आपने जो वरदान माँगा था, इसीलिए मैंने यह हत्या की है। अब तुम जो सजा दोगी, वह मैं स्वीकार कर लूँगा। अदिति कहती है, बेटा, जब तूने इतनी सेवा की, तो अब मैं तेरे मरने का वरदान नहीं चाहती। ठीक है, इन उनचास बच्चों को तुम अपने साथ रखना और ये तेरे सहयोगी बनें, मैं इतनी ही कामना करती हूँ। इनका विरोध मत करना, ऐसे रखना जिससे ये लोग तुम्हारा विरोध न करें। ये ही उनचास मरुत कहलाए। इसके पीछे भी आध्यात्मिक तात्पर्य है, जिसमें जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। यहाँ पर हम मरीचि नाम से सम्बन्ध रखते हैं। यह मरीचि नाम वेदों में मिलता ही नहीं है। पुराणों में भी यह नाम नहीं मिलता। पर गीता के कुछ पुराने टीकाकारों का मत है कि मरीचि का अर्थ है दीप्ति या प्रकाश। सूर्य की किरण को हम मारीच कहते हैं। मारीच अर्थात् प्रकाश की किरण। इस सन्दर्भ से यहाँ यह अर्थ हुआ कि इन मरुतों के भीतर जो दीप्ति है, जो प्रभा है, जो तेजस्विता है, वह मैं हूँ। नक्षत्रों में मैं चन्द्रमा हूँ। अब देखा जाए, तो आकाश मण्डल में चन्द्रमा से तो कितने बड़े-बड़े नक्षत्र हैं। परन्तु पृथ्वी से तो हमें चन्द्रमा दिखाई देता है। वह जीवन देता है। औषधियों को पुष्ट करता है। हमारे यहाँ की परम्परा ऐसा कहती है। आयुर्वेदशास्त्र कहता है कि चन्द्रमा से ही हमारी औषधियाँ और अन्न पुष्ट होते हैं।

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना।।२२।।

वेदानाम् (वेदों में) सामवेद: अस्मि (सामवेद हूँ) देवानाम् वासव: अस्मि (देवों में इन्द्र हूँ) इन्द्रियाणाम् मन: अस्मि (इन्द्रियों में मन हूँ) च भूतानाम् (और प्राणियों में) चेतना अस्मि (चेतना हूँ)।

''वेदों में मैं सामवेद हूँ, देवों में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ और प्राणियों की चेतना हूँ।''

वेदों में मैं सामवेद हूँ। ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद और यजुर्वेद, ये चार वेद हैं। तो फिर भगवान ने सामवेद ही क्यों कहा? ऋग्वेद तो सबसे पुराना है। इसीलिए वेदों में उसी को प्रधानता देनी चाहिए थी। ऋग्वेद से ही सारी ऋचाएँ निकली हैं। केवल ७०-७२ ऋचाएँ ऐसी हैं, जो ऋग्वेद में नहीं मिलतीं। सामवेद बहुत मोटा ग्रन्थ है, जिसमें बहुत-सी ऋचाएँ हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सामवेद का अभिनवत्व इन्हीं ऋचाओं के कारण है। परन्तु इसके बावजूद उसकी नूतनता एक अन्य कारण से है। सामवेद इन ऋचाओं का गान करना सीखाता है। किस प्रकार गायन किया जाए, स्वर का आरोह-अवरोह और सस्वर पाठ की पद्धतियाँ सामवेद से ही मिली हैं। इसीलिए 'सामगान' कहा जाता है। सामगान कहने से ही वेदों का सामगान समझा जाता है। सामवेद वेदों को गायन की पद्धति देता है। जब उच्चारण होता है, तो ऐसा लगता है कि संगीत की स्वर-लहरी उठ रही है। सामवेद का यह मानना है कि स्वर-साधना के द्वारा हम नादब्रह्म को जगा सकते हैं। इसीलिए भगवान कहते हैं कि वेदों में सबसे आकर्षक यही सामवेद है और मैं वेदों में सामवेद हूँ। मानो प्रभु यहाँ अपनी विभूति दिखा रहे हैं। क्योंकि जब वेदों का पठन-पाठन करेंगे, तो हमें ऐसा लगेगा कि भगवान ही तो वेदस्वरूप होकर विद्यमान हैं। इसके बाद अपनी अन्य विभूतियों के बारे में बता रहे हैं – **देवानामस्मि वासवः** – देवताओं में मैं वासव: – वासु हूँ, इन्द्र हूँ। **इन्द्रियाणां मनश्चास्मि** – इन्द्रियों में मैं मन हूँ। मन ही इन्द्रियों का राजा है। मन जब किसी अन्य इन्द्रिय के साथ संयुक्त होता है, तभी उस इन्द्रिय की संवेदना होती है। मन यदि किसी इन्द्रिय के साथ संयुक्त न हो, तो इन्द्रिय की कोई चरितार्थता नहीं होती। जैसे मेरा मन कहीं दूसरी जगह लगा है और हवा में एक सुन्दर संगीत बह रहा है। पर चूँकि मेरा मन दूसरी जगह लगा है। मेरी कानरूपी इन्द्रिय के साथ नहीं लगा है, तो इतना कर्णप्रिय संगीत के होते हुए भी, संगीत की लहरियाँ कानों से टकराती हैं, तब भी वह संगीत मुझे सुनाई नहीं पड़ता। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि मेरा मन कानरूपी इन्द्रिय से संयुक्त नहीं है। इसीलिए तो कहा है कि मन ही राजा है। गीता में यह भी कहा है कि मन जब जिस इन्द्रिय के पीछे जाता है, तभी हमें उसी इन्द्रिय का ज्ञान प्राप्त होता है। मन पर नियन्त्रण कर लिया, तो इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो जाता है। इसीलिए जब साधना की बात आती है, उसमें शम, दम आता है। दम, शम कभी नहीं आता। उस क्रम में शम, दम,

शेष भाग पृष्ठ ५२३ पर

सर्वधर्म समभाव के प्रतीक : विनोबा

डॉ. एस. एन. सुब्बा राव

निदेशक, राष्ट्रीय युवा योजना, नई दिल्ली

विनोबा के जीवन से हम क्या लाभ उठा सकते हैं, ऐसा जब हम सोचते हैं, तब ध्यान में आता है कि उन्होंने सर्वधर्म-नाममाला की रचना की है। इस नाममाला में सम्पूर्ण विश्व के लिये संदेश विद्यमान है। प्रारम्भ में हिन्दू धर्म न तो किसी व्यक्ति पर अवलम्बित था और न किसी पुस्तक पर। वेदों के ऋषि बोलते गये, धर्म बनते गये। यह हिन्दू धर्म का सौन्दर्य है। पहले यह सनातन धर्म के नाम से पहचाना गया। ऋषियों ने धर्म के माध्यम से संदेश दिया – **अहं ब्रह्मास्मि** – अर्थात् मैं साक्षात् ब्रह्म हूँ। आत्मतत्त्व सम्पूर्ण विश्व का संचालन करता है। वह सूरज, चाँद, पहाड़, नदी सबका उद्‌गम है। उसका स्मरण करने से स्फूर्ति आती है। इसके बाद ऋषि कहते हैं, यह आत्मतत्त्व कहाँ है, जिसे तुम खोजना चाहते हो? तब वे कहते हैं कि मैं स्वयं ही उसका केन्द्र-बिन्दु हूँ। यह आत्मतत्त्व मेरे ही भीतर है। मुझमें कितनी महान शक्ति विद्यमान है !

आचार्य विनोबा भावे

सनातन धर्म के बाद जैन धर्म आया। आज से छब्बीस सौ साल पहले महावीर स्वामी चौबीसवें तीर्थंकर हुए। उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि भगवान आसमान में नहीं बैठा है। मनुष्य अपने सद्‌विचार से, सत्कर्म से, सदाचार से ईश्वर बनता है। उन्होंने वही संदेश दोहराया – **ब्रह्मनिष्कलम् अहम्**। मुझमें कोई कमी नहीं है। मैं शुद्ध हूँ, क्योंकि मैं भगवान हूँ। जैन धर्म में मनुष्य ही भगवान बनता है।

उसके थोड़े दिन बाद गौतम बुद्ध आए। बोधिवृक्ष के नीचे बैठे। उन्हें तपस्या का फल मिला। इसके बाद वे महाप्रयाण की ओर अग्रसर हुए। तब उनके आनन्द आदि शिष्य दुखी हो गए। उन्होंने कहा, भगवन, क्या आप चले जाएँगे? गौतम बुद्ध ने कहा, कहाँ चले जाएँगे? **अप्पदीपो भव** – ... । तुम्हारे भीतर ही वह दिव्य ज्योति है। तुम उसे बाहर कहाँ खोजते हो? वही बात सामने आती है, मनुष्य ही भगवान है।

थोड़े दिन बाद दो हजार साल पहले ईसा मसीह आए। वे क्या संदेश लाये? उन्होंने कहा – द किंगडम ऑफ हेवन इज विदिन यू – अर्थात् 'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर ही है।' अलग-अलग भाषा में सभी एक ही बात बोल रहे हैं। तब जीवन कितना सुन्दर होना चाहिए। इसके बाद इस्लाम धर्म आया। प्रोफेट मोहम्मद कहते हैं, जो अपने आप को पहचानेगा, वह खुदा को पहचान लिया। तो खुदा हमारे भीतर बैठा है।

पाँच सौ साल पहले सिख धर्म आया। उन्होंने दस गुरुओं को माना। उनका संदेश क्या है? कहाँ खोज रहे हो। आपका मन है, जो दिव्य ज्योति है। पाँच हजार साल पहले ऋषियों ने जो विचार किया, वही पाँच सौ साल पहले सिख गुरुओं ने भी सोचा। अगर यह संदेश सभी मनुष्य पहचान ले, तो झगड़े की सम्भावना समाप्त हो जायेगी।

भविष्य में यदि विश्व को सुखी रहना है, तो केवल सर्वधर्म-समभाव से काम नहीं चलेगा। उसके स्थान पर सर्वधर्म-ममभाव होना चाहिए। सभी धर्म मेरे ही अन्दर विद्यमान हैं। गाँधीजी ने भी मनुष्य के भीतर ईश्वर पहचानने की बात कही। विनोबाजी की नाममाला 'ओम् तत् सत्' का यही संदेश है।

गाँधीजी के साथ पत्र-व्यवहार हुआ, उसके बाद विनोबाजी अहमदाबाद स्थित कोचरब आश्रम पहुँच गए। दोनों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित हुआ। जब गाँधीजी इंग्लैंड में थे, तब

उनसे एक अंग्रेज लड़के ने पूछा था – आपने भगवद्गीता पढ़ी है क्या? तब गाँधीजी को बहुत संकोच हुआ। उन्होंने अंग्रेजी में भगवद्गीता पढ़ी। भारत आने पर उन्हें संस्कृत में गीता पढ़ने की इच्छा हुई। गाँधीजी ने महादेव भाई से संस्कृत में गीता सिखाने को कहा। महादेव भाई ने कहा, आश्रम में नया लड़का विनोबा आया है। वह आपको अच्छे से संस्कृत में गीता सिखा सकता है। गाँधीजी ने विनोबा से पूछा, मुझे संस्कृत में गीता सिखा सकते हो? विनोबाजी ने कहा, सिखा तो सकता हूँ, लेकिन एक शर्त है। यदि आप बीच में अनुपस्थित हो जाएँगे, तो सिखाना बन्द हो जाएगा। गाँधीजी इसके लिए तैयार हो गए। प्रारम्भ में सतत अध्ययन चला, परन्तु कुछ समय बाद गाँधीजी अनुपस्थित रहने लगे। गाँधीजी कुछ दिन बाद विनोबा के पास पहुँचे और गीता सिखाने का आग्रह किया। विनोबा ने कहा, आप अनुपस्थित हुए इसलिए नहीं सिखा सकता। तब गाँधीजी ने कहा, भाई मेरी बात सुनो। मैं आपका गीता का पाठ पढ़ रहा था। बावनवें श्लोक तक तो कोई परेशानी नहीं हुई। इसके बाद जब स्थितप्रज्ञ का श्लोक आया, तब रुक गया। इसे जीवन में कसता नहीं हूँ, तो अभी इसके पढ़ने के योग्य नहीं हूँ और बहुत प्रयास करने के बाद अठारहवें श्लोक के अनुसार बरतने लगा, तब फिर मुझमें गीता अध्ययन करने की योग्यता आ गयी। अब मुझे पढ़ाओ। विनोबा विचार करने लगे, यह तो गम्भीर विद्यार्थी है। इसके बाद विनोबाजी ने गीता का अध्यापन पूरा किया। ○○○

पाषाण हृदय को पिघलाने की शक्ति है : विनोबा विचार

अजय पाण्डेय

उपसचिव, सचिवालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

बालक को तैयार करने में पारिवारिक वातावरण की महती भूमिका होती है। त्याग, भक्ति और वैज्ञानिक जीवन पद्धति से बालक के मन पर सुन्दर संस्कार अंकित होते हैं। इसका दर्शन हमें विनोबाजी के जीवन पर स्पष्ट दिखायी देता है। विनोबाजी ने जिस ऊँचाई का स्पर्श किया उसमें उनके दादा शंभुराव जी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। उनका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल और निर्मल था। उन्होंने सुनार की छोटी हथौड़ी के समान विनोबा के जीवन को गढ़ा। पुजारी होते हुए भी प्रगतिशील विचारों से ओतप्रोत थे। अपना मंदिर उन्होंने हर किसी के लिए खोल रखा था। वहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। अपने घर में भजन गाने के लिए मुस्लिम गायक को बुलाते हैं। विनोबा के सामने बचपन में सामाजिक समरसता और धार्मिक सहिष्णुता के उदाहरण उपस्थित हुए। उनके घर में आम का बगीचा था। जब आम तुड़वाये जाते तब सबसे पहले आसपास के घरों में बाँटे जाते। यह त्याग का प्रशिक्षण था। विनोबा की माता ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करती हैं। वे विनोबा से कहती हैं – नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से बयालीस पुश्तें तर जाती हैं। उनकी माता के प्रत्येक कार्य में आध्यात्मिकता का भाव भरा हुआ था। पड़ोसी के बीमार होने पर उनके घर भोजन बनाने पहले जाती हैं और अपने घर में बाद में बनाती है। बीमार को गरम और ताजा भोजन मिलना चाहिए। इसका विनोबा के चित्त पर गहरा असर हुआ। उनके घर में एक नेत्रहीन को रखा था। वे परिवार के सदस्य की तरह रहते थे। जब उनका स्वर्गवास हुआ, तब पता चला कि उनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। मनुष्यता के कारण उन्हें घर में स्थान दे रखा था। विनोबाजी 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' का भाव लेकर काशी पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने एक दुकान से ताला खरीदा। दुकानदार ने ताले के दाम अधिक लिए। उन्होंने अपने मौन से दुकानदार को अपराधबोध से ग्रस्त कर दिया। दुकानदार ने उन्हें पैसे वापस लौटा दिए। व्यक्ति के निर्मलीकरण का रसायन विनोबाजी के पास है। उनके पास पाषाण हृदय को पिघलाने की शक्ति है। ○○○

क्षणमिह सज्जनसंगतिरेका

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

मेरे जीवन का यह परम सौभाग्य रहा है और मेरा यह व्यक्तिगत विश्वास है कि मेरे करोड़ों जन्मों का पुण्य रहा है, जिस पुण्य के फलस्वरूप जीवन के लगभग १४-१५ वर्ष मुझे बेलूड़ मठ में रहने का सौभाग्य मिला। उसमें सन् १९७२ से १९८९ तक मुझे पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह भी मेरा परम सौभाग्य था कि उनसे मुझे शास्त्र पढ़ने का भी सुअवसर मिला। उन्होंने कृपापूर्वक हमें उपनिषद पढ़ाया। स्वामी विवेकानन्द जी का ज्ञानयोग, जो कठिन ग्रन्थ है, उसे भी उन्होंने हमें पढ़ाया। इसके अतिरिक्त उन्होंने समय-समय पर बहुत-से उपदेश दिये।

बेलूड़ मठ में जिस कार्य का दायित्व ठाकुर ने मुझे दिया था, उस कार्य के कारण उनसे बहुत सम्पर्क रहता था। महाराज काकुड़गाछी में रहते थे। मुझे मठ में कानून की दृष्टि से जिसे मुखत्यार (Power of Attorney) कहते हैं, वह कार्य करना पड़ता था। हमारे प्रेसीडेन्ट महाराज, वाइस प्रेसीडेन्ट महाराज जी लोगों को कचहरी अदालत में जाने की आवश्यकता नहीं रहती है। उनके प्रतिनिधि के रूप में, मुखत्यार के रूप में वह काम मुझे करना पड़ता था, इसलिये निरन्तर उनके सम्पर्क में रहने का सौभाग्य मिला। अभी भी उनका चिन्तन करके, उनका स्मरण करके मेरा हृदय भर जाता है।

यद्यपि वही गुरुशक्ति सभी गुरुओं के माध्यम से प्रकाशित हो रही है, किन्तु प्रकाश में भेद है। जैसे वही विद्युत सभी बल्ब में, ट्यूब में प्रकाशित है, पर यहाँ जो बल्ब लगाया गया है, उसमें प्रकाश विशेष है।

हम जिनके सम्पर्क में आये, उनसे उसका अनुभव हुआ। हमको तो कोई आध्यात्मिक अनुभूति नहीं है। जीवन में अनुभूति के बाद मनुष्य कैसा हो जाता है, शास्त्रों में थोड़ा बहुत कुछ लक्षण मैंने पढ़ा है। गीता के स्थितप्रज्ञ दर्शन में उसका उल्लेख है। १४ वें अध्याय में भक्तियोग में उसके लक्षण हैं। त्रिगुणातीत में उसके लक्षण हैं। उपनिषदों में उसके लक्षण बताये गये हैं –

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।
(मुण्डकोपनिषद् २/२/८)

परम पूज्य भूतेशानन्दजी महाराज, इन सबके विग्रह थे। शब्दों से मैं आपको ये बता नहीं सकता हूँ और कोई नहीं बता सकता है। काकुड़गाछी में कई बार दीक्षा होती थी। जब मैं कभी अपने काम से जाता, तो कभी-कभी वहाँ दीक्षा हो रही होती। पूजनीय महाराज अपने कक्ष से काकुड़गाछी के मंदिर में जब प्रणाम करने जाते थे और प्रणाम करके वापस लौटते थे, तो उनकी ऐसी दिव्य मूर्ति होती थी कि उसको शब्दों में बताना कठिन है। उनको देखकर हृदय में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी और जड़ व्यक्ति के मन में भी शायद चैतन्य आ जाता था। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन में जो लीलाएँ की थीं, उनका संग करनेवाले मास्टर महाशय, उन्हें आनन्दमय पुरुष दिखते हैं, जिसका उल्लेख वे श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में स्थान-स्थान पर करते हैं। परमपूज्य भूतेशानन्दजी महाराज को देखकर यह अनुमान होता है कि आनन्दमय पुरुष कैसे होते हैं? आनन्द का बाजार लगा रहता था उनके पास ! काकुड़गाछी में भी सैकड़ों बार मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला।

बेलूड़ मठ में सुबह साधु-ब्रह्मचारी जब प्रणाम करने जाते थे, तब मैं भी उनके पास जाता था। उनके पास १५०-२०० साधु लोग प्रणाम करने आते थे। वे कैसे आनन्दमय पुरुष थे, उसका एक उदाहरण आपको बताऊँ। वे बड़े विनोदी थे! शायद यह पिछले वर्ष की बात होगी। बेलूड़ मठ में हमारा एक संन्यासी है, उसकी ऊँचाई राजीव महाराज से कम होगी और चौड़ाई में राजीव महाराज से चार गुना अधिक होगी। वह बहुत मोटा है। उसका नाम पार्थ महाराज है। संन्यास नाम भूल रहा हूँ। वह लड़का राजीव के उम्र का ही होगा। हमलोग प्रणाम करने जाते, तो एक कोने में खड़े रहते थे। वह भी एक कोने में खड़ा था। उस दिन मैं जाकर महाराज

को प्रणाम किया और पार्थ के पास जाकर खड़ा हो गया। वहाँ बहुत से साधु लोग खड़े थे। हमें देखकर बड़े आनन्द से महाराज ने कहा, आज गेंडे को पता लगा कि मेरे पास हाथी भी है। पहले तू ही ये समझता था कि मैं ही सबसे बड़ा हूँ, अब देख मेरा हाथी आया है। मैं पहले इससे भी अधिक मोटा था। यह सुनकर सभी लोग हँसने लगे।

मैंने उन्हें उस समय भी देखा, जब उनका हृदय का आपरेशन हुआ था। डॉक्टर ने हमलोगों को बता दिया था कि ५० प्रतिशत बचने की आशा है, पर आपस में वे लोग जानते थे कि केवल १५-२० प्रतिशत आशा है। ९०-९२ वर्ष की उम्र में हृदय का ऑपरेशन हो रहा है। हमलोगों को आश्वासन देने के लिए वे लोग कहते थे ५० प्रतिशत आशा है। बम्बई की ब्रीच कैन्डी अस्पताल में उनका आपरेशन हो रहा था ! जब महाराज को उनके अस्पताल के कपड़े आदि पहनाकर ट्राली में ले जा रहे थे, तो हम साधु लोग वहाँ प्रणाम करने के लिए खड़े थे। बहुत दुख हो रहा था, मन खराब था। आँखें भी भर आयी थीं। ट्राली में लेटे हुए उन्हें इंजेक्शन आदि लगा दिया गया। उनके सेवक लोग भी थे। उस समय महाराज हमलोगों से कहते हैं, अच्छा तुम लोग मुझे फेयरवेल देने के लिये आये हो। मैं नहीं जानेवाला हूँ। मैं फेयरवेल लेने फिर से आऊँगा। मैं फिर से तुम लोगों का स्वागत ग्रहण करने के लिये आनेवाला हूँ। उनकी यह बात सुनकर आनन्द भी हुआ। ईश्वर की कृपा से उसके बाद वे ६-७-८ वर्ष जीवित रहे।

आध्यात्मिक दृष्टि

महाराज की एक आध्यात्मिक दृष्टि थी, जो उनकी प्रत्येक चर्चाओं में झलकती थी। सन् १९९६, डेढ़-दो साल पहले की बात है। मैं रायपुर से बेलूड़ मठ गया था। महाराज के चरणों में बैठकर उनके चरणों में हाथ घुमा रहा था। सेवकों ने उन्हें नये कपड़े पहनाये थे। मैंने कहा, नये कपड़े, नया कुर्ता में आप बहुत सुन्दर दिख रहे हैं। वे कहने लगे, धोती भी नयी है, अन्दर नेकर को हाथ लगाकर कहने लगे, गंजी (बनियान) भी नयी है। मैंने कहा बहुत अच्छा। बड़े प्रसन्न थे। फिर वे मुझको अपना हाथ दिखाकर कहने लगे, देखो ये पुराना हो गया है, अब इसको भी बदलना पड़ेगा। मैंने कहा नहीं महाराज ! अब ऐसा लगता है कि उस समय उनका यह संकेत था।

इसी साल १९९८ जून के थोड़े दिन पहले की बात होगी। वहाँ कुछ भक्त आये हुए थे। वे प्रणाम कर रहे थे। महाराज को माला आदि पहनाकर बैठाये थे। उन्होंने सेवक को बुलाकर कहा, अरे, तेरा कैमरा कहाँ है? सामान्यत: कभी ऐसा वे कहते नहीं थे। सेवक ने कहा, हाँ, महाराज है। तो लाओ, फिर यह मौका नहीं मिलनेवाला है, जो फोटो-वोटो लेना है, ले लो। तो उनको जाने का आभास तो था ही।

जिसका जो न्यायोचित अधिकार है, उसे पहले दे दो

उनके जीवन की कुछ विशेषताएँ थीं। जो शरद महाराज के जीवन में देखने-पढ़ने को मिलती हैं, वे उनके भी जीवन में थीं। काकुड़गाछी बहुत पुराना आश्रम है। महाराज वहाँ रहते थे। भक्तों ने कुछ जमीन दे रखी थी। वहाँ से बहुत दूर सुन्दरवन में लगभग दो-तीन सौ एकड़ जमीन थी। उसके कुछ मामले-मुकदमें थे। जब कम्युनिस्ट सरकार आयी, तो बहुत तंग करने लगी ! काकुड़गाछी की वह सारी जमीन थी। उसमें जो आये, उससे निपटना पड़ता था। बहुत कष्टप्रद जगह है वह। मैं वहाँ गया हूँ। बस में २ घण्टे जाओ, फिर बड़ी नौका में ६-७ घण्टे जाना पड़ता है। दोनों और घने जंगल हैं। शेर-भालू कब आ जायें पता नहीं ! पैदल जाना पड़ता है। मैं वहाँ जाकर सब कुछ देखा, लोगों से बातचीत की और वापस आकर विस्तार से महाराज को बताया। महाराज ने मुझे कहा, तुम तो कानून पढ़े हो, जानते हो, क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि इसको छोड़ सको? मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ ! मैं गया था व्यवस्था देखने के लिये कि इस पर क्या कानूनी कारवाई करें? कैसे यह हमारे मठ की सम्पत्ति रहे। उन्होंने कहा, देखो ! हमलोग कौपीनधारी संन्यासी हैं, वृक्ष के नीचे रहना हमारा आदर्श है। वे लोग गरीब हैं, इतने साल से वे लोग वहाँ खेती कर रहे हैं। क्या तुम उन लोगों की कुछ व्यवस्था नहीं कर सकते? मैंने कहा, आपका आदेश हो, तो करेंगे। उनके आदेश से मैंने जो लोग उस जमीन में खेती करते थे, यानि जो वहाँ नौकर थे, वह सारी जमीन उन लोगों को देने की व्यवस्था करने लगा। पूज्यपाद गम्भीरानन्द महाराज तब रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव थे। महाराज ने कहा – गम्भीर महाराज से बात करो। उनको हमारी यह इच्छा बताओ। मैंने गंभीर महाराज को ये सब बातें बतायी। उन्होंने कहा, बहुत अच्छा भूतेशानन्दजी ने कहा है। उसके बाद वह लाखों की सम्पत्ति हमलोगों ने उन किसानों को दे दी। कम्युनिस्ट सरकार चाहती थी कि इनको बदनाम करें। किन्तु उनको

भी आश्चर्य हुआ कि ऐसे ये लोग हैं कि लाखों की सम्पत्ति गरीबों को बाँट दिया।

इतना ही नहीं, जिन गरीबों के पास रजिस्ट्री करने का पैसा नहीं था, वह पैसा भी हमलोगों ने दिया। यह कार्य पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज की उदारता और कृपा से हुआ था। यह है रामकृष्ण संघ का आदर्श, जो उनके जीवन में अवतरित था। हम तीन इंच जमीन छोड़ने को तैयार नहीं होते, लेकिन महाराज ने कई एकड़ जमीन गरीबों में वितरित करवा दिया।

इसी सन्दर्भ में महाराज ने एक बात और कही थी, हम-सबके जीवन के लिये बहुत उपयोगी है। महाराज ने कहा था, देखो तुम किसी को देकर संतुष्ट नहीं कर सकते, किन्तु एक बात ध्यान रखना, जिसको न्यायोचित ढंग से जो मिलना चाहिए, जिसका न्यायपूर्ण जो अधिकार है, उसको उसके माँगने के पहले दे देना। ये गाँठ बाँधकर रखनेवाली बात है, गृहस्थों के लिये और संन्यासियों के लिये भी। विवशता में मनुष्य ले-देकर सौदा किया होता है, पर जब भी अवसर मिलता है, फिर छीन लेना चाहता है। ○○○

पृष्ठ ५१८ का शेष भाग

तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान, ये षट् सम्पत्तियाँ हैं। शम का मतलब है मन पर विजय पाना। दम का मतलब है, इन्द्रियों पर विजय पाना। शास्त्र में क्या कहा गया? पहले जब मन पर विजय होती है, तब कहीं इन्द्रियों पर विजय प्राप्त हो सकती है। इसीलिए जब इन्द्रियों की ओर ध्यान जाएगा, तब मन ही सबसे पहले आएगा। प्रभु कहते हैं कि समस्त इन्द्रियों में मैं मन हूँ। प्रभु का यह कहना है कि इन्द्रियों के ध्यान से मन का चिन्तन होगा और प्रकारान्तर रूप से मेरा ही चिन्तन होगा, क्योंकि मैं ही मन के रूप में इन्द्रियों में विद्यमान हूँ। मन में विचार की तरंग उठी और हम उसमें रमे, तो भगवान की बात का स्मरण हो गया कि अरे, भगवान ने तो कहा है कि इन्द्रियों में तो मैं मन हूँ। तात्पर्य यह कि मन भगवान का ही एक रूप है। फिर भगवान कहते हैं – **भूतानामस्मि चेतना** – किसी भी प्राणी में चेतना के रूप में विद्यमान रहता हूँ। किसी भी व्यक्ति, किसी भी प्राणी में हमें जो चेतना खेलती दिखाई देती है, तब हमें ध्यान आता है कि अहो, अहो, प्रभु ने तो कहा है कि भूतों के भीतर, प्राणियों के भीतर चेतना तो मैं स्वयं हूँ। जब किसी रूप को देखता हूँ और जब साधना का अभ्यास करता हूँ, तो रूप गौण हो जाता है। उस रूप के पीछे जो चेतन तत्त्व स्पन्दित है, साधक का ध्यान उसी पर केन्द्रित हो जाता है, जिसके कारण रूप रूप मालूम पड़ता है। चेतन-तत्त्व जब बन्द हो जाता है, तब रूप तो पड़ा रहता है, पर हमारा ध्यान उस पर नहीं जाता। इसका मुख्य कारण यह चेतन-तत्त्व ही है। शव की ओर देखने की इच्छा नहीं होती, क्योंकि चेतन-तत्त्व ने स्पन्दित होना बन्द कर दिया है। किसी सुन्दर वस्तु को जब देखते हैं, तो वह केवल उस चेतन सत्ता के कारण ही रूपवान दृष्टिगोचर होती है। नहीं तो, यही रूप अरूप, कुरूप हो जाता है। इसके बाद प्रभु कहते हैं – **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५०२ का शेष भाग

भाष्य – या ते त्वदीया तनुः वाचि प्रतिष्ठिता वक्तृत्वेन वदनचेष्टां कुर्वती, या श्रोत्रे या च चक्षुषि या च मनसि संकल्प-आदि-व्यापारेण सन्तता समनुगता तनुः तां शिवां शान्तां कुरु, मोत्क्रमीः उत्क्रमणेन अशिवां मा कार्षीः इत्यर्थः।।

भाष्यार्थ – तुम्हारा जो रूप वाणी में स्थित है तथा वक्तृत्व-शक्ति के द्वारा बोलने की क्रिया करती रहती है; तुम्हारा जो रूप श्रोत्रों में, चक्षुओं में तथा मन में संकल्प आदि क्रियाओं में व्याप्त रहता है, उन्हें शान्त बनाओ। उनसे ऊपर मत उठो अर्थात् ऊपर उठकर उनका अमंगल मत करो।।२/१२।। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ४९३ का शेष भाग

हाथ में मशाल लेकर आगे बढ़ रही महिला की मूर्ति निवेदिता की स्मृति में समर्पित की थी।

२३ नवम्बर, १९३७ को उनका निधन हुआ। आधुनिक विज्ञान के विश्व में बोस का स्थान ध्रुव तारे के समान अटल है। बोस आत्मनिर्भर, सरल, धैर्यवान, अच्छे प्राध्यापक, अभिमानशून्य, स्नेही तथा सहृदय थे। उन्होंने विद्यार्थियों को सूक्ष्म अवलोकन तथा नए ज्ञान को अर्जित करने के लिए प्रोत्साहित किया। वे अपने अनुसन्धान संस्थान को प्रयोगशाला नहीं, बल्कि एक मन्दिर मानते थे। वे एक आदर्श वैज्ञानिक के रूप में निःस्वार्थ भाव से आजीवन परिश्रम करते रहे। उनका जीवन विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (३५)

स्वामी सारदेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१८/०९/१९८६, वृन्दावन

मैं महाराज के साथ मित्र जैसा बातें किया करता था। वे बिना कुर्ता के ही बिछौना पर सोये हुए हैं। मैंने कहा, ''महाराज, आपकी छाती देखकर ऐसा लग रहा है कि आप एक बीस वर्ष के युवक हैं।'' वे थोड़ा-सा मुस्कराए। जप करते-करते उनकी अँगुली टेढ़ी हो गयी थी और एक आसन में पद्मासन में दीर्घसमय तक बैठने के फलस्वरूप उनका घुटना सीधा नहीं होता था। अनुप को देखता था कि वह महाराज की अँगुली को खींच कर बार-बार सीधा कर रहा है तथा घुटना को भी सीधा करने का प्रयास कर रहा है। वे तपस्या एवं कठोरता करना दिखाकर गये। उन्होंने अनुप से कहा था कि दीर्घ समय तक एकासन पर बैठकर जप-ध्यान करने के परिणामस्वरूप उनके शरीर की यह अवस्था हुई है।

ध्यान करते हुए स्वामी सारदेशानन्द जी महाराज

उस दिन मैंने उनसे पूछा, ''महाराज, श्रीमाँ के भीतर क्या विशेषता देखी थी? आप तो श्रीमाँ के पास जयरामवाटी में बहुत समय तक थे।'' उन्होंने शान्तभाव से उत्तर दिया, ''निरभिमानिता। श्रीमाँ के भीतर कोई अभिमान-अहंकार नहीं था।''

मनुष्य के भीतर ही अहंकार है। ईश्वर में कोई अहंकार नहीं। अहंकार होता है अज्ञान से।

मैं – श्रीमाँ के पूजा के सम्बन्ध में कुछ कहिए।

सारदेशानन्दजी – वे पूजा के उपरान्त ध्यान करती थीं। उस समय उनको समाधि में डूब जाते हुए देखा हूँ।

मैं – दीक्षा के उपरान्त श्रीमाँ किस प्रकार का आध्यात्मिक निर्देश दिया करती थीं?

वे चुप रह गये।

मैं – श्रीमाँ दीक्षा के समय किसको इष्ट कहकर निर्दिष्ट करती थीं?

महाराज – मैं अपना जानता हूँ। भगवान को ही इष्ट निर्दिष्ट करती थीं।

मैं – श्रीमाँ ने ठाकुर के विषय में क्या बातें बतायी हैं?

महाराज चुप रह गये।

महाराज ने मुझसे कहा था कि उन्होंने श्रीमाँ की स्मृति अति-विस्तारपूर्वक लिखा था और एक मित्र को पढ़ने के लिए दिया था। तदुपरान्त वे तपस्या करने गये। कई वर्षों के पश्चात् वापस आकर वह स्मृति की कॉपी माँगने पर मित्र ने कहा कि कॉपी खो गयी। उन्होंने इसे श्रीमाँ की इच्छा मानकर पुनः लिखना आरम्भ किया, जो परवर्तीकाल में 'श्रीश्रीमायेर स्मृतिकथा' के रूप में उद्बोधन से प्रकाशित हुआ। सत्य बात यह है कि हमने एक मूल्यवान वस्तु को खो दिया है।

१९/०९/१९८६, वृन्दावन

रात्रि में ब्रह्मचारी अनुप ने मुझे अपनी दैनन्दिनी दिखायी। वह 'साधुसंग : स्मृति रत्नमाला' नाम से ११० और १११ वर्ष के उद्बोधन पत्रिका में धारावाहिक रूप से स्वामी शुक्लात्मानन्द (अनुप का संन्यास नाम) के नाम से प्रकाशित हुआ था। उसमें महाराज के बहुत सारगर्भित घटनाएँ और उपदेश हैं। अनुप के दैनन्दिनी से मैंने कई घटनाएँ और उपदेश अपनी दैनन्दिनी में लिखकर रख लिया था। उसमें से कुछ का यहाँ उल्लेख कर रहा हूँ।

१९४७ ई. में देश-विभाजन के उपरान्त पूर्व बँगाल

के नोआखाली में हिन्दू-मुसलमान के दंगा के समय सारदेशानन्दजी वहाँ पर राहत-कार्य करने गये थे। महात्मा गाँधी भी गये थे। गाँधीजी ने महाराज से बांगला कथामृत (श्रीरामकृष्ण-वचनामृत) सुनना चाहा। उन्होंने पहले दिन गाँधीजी के सामने वचनामृत का पाठ किया। दूसरे दिन जाने पर गाँधीजी के सचिव निर्मल बसू ने कहा कि गाँधीजी व्यस्त हैं। महाराज वापस आ गये। अगले दिन पुन: महाराज के वचनामृत पढ़ने जाने पर गाँधीजी ने कहा, ''स्वामीजी, कल आप आये नहीं?'' महाराज ने कहा, ''आया था, किन्तु आपके सचिव ने मुझसे कहा कि आप व्यस्त हैं।'' तत्क्षण गाँधीजी ने कहा, ''स्वामीजी, क्या यह कार्य अन्य कार्य से कम आवश्यक था?'' मार्ग में चलते समय गाँधीजी संन्यासियों को सामने रखकर स्वयं पीछे चलते थे।

महाराज का एक विशेष गुण मेरे ध्यान में आया – वे जिस प्रकार संन्यासियों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए कहा करते, उसी प्रकार गृहस्थों की आध्यात्मिक उन्नति के विषय में भी बोला करते थे। **संन्यासियों को चार बातें स्मरण** करा देते थे :

१. सत्-चरित्र गठन – इन्द्रिय और मन का संयम, षट्रिपुदमन।

२. जगत के सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता सर्वव्यापी-सर्वशक्तिमान परमेश्वर के अस्तित्व पर दृढ़ विश्वास तथा जगत के कल्याण हेतु वर्तमान समय में उनका श्रीरामकृष्ण के रूप में आविर्भाव, संघ-प्रतिष्ठा और युगधर्म प्रवर्तनरूपी कर्म में सुदृढ़ विश्वास स्थापित करना।

३. नित्य-नियमित-भाव से प्रात:-सन्ध्या भगवत् उपासना करना। जप-ध्यान, प्रार्थना इत्यादि कर्म निष्ठा के साथ करने का अभ्यास करना। सत्संग, सद्ग्रन्थ आदि का पाठ करना। सभी कर्तव्य-कार्य सृष्टिकर्ता परमेश्वर के साक्षात् सेवाज्ञान से मन लगाकर बहुत प्रेम से सुसम्पन्न करना।

४. सबके साथ प्रेम से व्यवहार करना। यथासाध्य दूसरों के कल्याण हेतु प्रयत्न करना। किसी के प्रति द्वेष नहीं रखना, किसी का अनिष्ट न करना। आश्रम के नियम का निष्ठा के साथ पालन करना और अध्यक्ष के प्रति अनुगत होना तथा कर्तव्य-कार्य को मन लगाकर ठाकुर हेतु सेवाभाव से सम्पन्न करना ही अन्तर में सुख-शान्ति पाने का उपाय है।

गृहस्थ भक्तों के लिए करणीय चार विषय : (१) नित्य जप-ध्यान, (२) शास्त्रपाठ (वचनामृत), (३) संसार का सभी कार्य भगवद् बुद्धि से करना और (४) परोपकार करना, किसी का अनिष्ट नहीं करना।

सनातन धर्म के तीन स्तम्भ : (१) साधु-माहात्म्य, (२) उत्सव-पर्व और (३) तीर्थस्थान। वास्तव में यही सब हिन्दू धर्म को बचाकर और उज्ज्वल करके रखे हुए है।

धर्म जीवन का मूल : (१) शरीर से अलग चैतन्यस्वरूप आत्मा में विश्वास, (२) अच्छे-बुरे कर्मफल से सुख-दुख भोग अवश्यम्भावी और (३) कर्मफलदाता ईश्वर में विश्वास।

हमारे लिए चिन्तनीय विषय : ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने क्या धर्म स्थापन किया है? उनका धर्ममत और उनके द्वारा प्रदर्शित साधन-प्रणाली को स्वामीजी बेलूड़ मठ के नियमावली में लिख गये हैं। यह हमारे लिए मनन और पालन करने का विषय है।

मैंने कई बार महाराज की सेवा हेतु रुपये भेजे थे। वे वह रुपया आश्रम के साधुसेवा के मद में भेज देते थे और प्राप्ति-रसीद की जानकारी मुझे देते थे। उनके पास कुछ भी रुपया-पैसा नहीं रहता था। मेरे पास उनके दो पत्र (१७/०१/१९८७ और २०/१०/१९८७) हैं। वे शय्याशायी रहने पर भी मठ-मिशन की नवीन पुस्तक और पत्रिका सेवकों से पढ़वाकर सुनते थे। उनकी रागानुगा भक्ति और ज्ञानदृष्टि तथा सबके प्रति प्रेम एवं अनुकम्पा सभी को आकर्षित करता था।

साधन-भजन और शास्त्र-अध्ययन के फलस्वरूप महाराज की प्रज्ञादृष्टि खुल गयी थी। उनका स्वाधीन चिन्तन और नवीन दृष्टिकोण हमें नया प्रकाश दिखाता था। उन्होंने एक दिन अपने सेवक अनुप को बुलाकर कहा, ''लिखो – समुद्र-मंथन में विष के उत्पन्न होकर, संसार को ध्वस्त करने के लिए उद्धत होने पर, भगवान शिव ने स्वयं उस हलाहल को पीकर देवताओं को अमृत पिलाकर उन्हें अमर किया। उस हलाहल के सदाशिव के कण्ठ से लगने पर सदाशिव 'नीलकण्ठ' के नाम से प्रसिद्ध हुए। वर्तमान संसार में जड़ विज्ञान के विशेष चर्चा से उद्धृत ऐहिक सर्वसतारूप हलाहल के मानव-समाज को ग्रास करने हेतु उद्धृत होने पर भगवान श्रीरामकृष्ण ने उस नास्तिकतारूपी विष को जीर्ण करके ईश्वर के प्रति भक्ति-विश्वासरूपी वचनामृत का दान करके संसार

की रक्षा की। वही हलाहल उनके कण्ठ में कैन्सर के रूप में प्रकट हुआ।''

प्रचारविमुख संन्यासी स्वयं के अनुभव को दूसरों को बताना नहीं चाहते। शास्त्र में स्वसंवेद्य और परसंवेद्य नाम के दो शब्द हैं। स्वसंवेद्य अर्थात् जिसको अनुभूति हुई है, वह जानता है। परसंवेद्य अर्थात् शास्त्र में लिखित मुक्तपुरुष के लक्षण जानकर, उन लक्षणों को उस व्यक्ति पर आरोपित करके उसका मूल्यांकन करते हैं। वृन्दावन में अनुप ने मुझे यह घटना बतायी थी : एक अमेरिकी दम्पती को महाराज बहुत स्नेह करते थे। उनमें से एक ने कौतूहल से महाराज से पूछा, ''स्वामीजी, आपकी अनुमति मिलने पर एक प्रश्न करूँगा। कृपा करके क्या उत्तर देंगे?'' महाराज की सहमति मिलने पर उन्होंने प्रश्न किया, ''क्या आपको कोई दर्शन या आध्यात्मिक उपलब्धि हुई है?'' महाराज ने कहा, ''जीवन में कभी भी मैं किसी भी प्रकार के दर्शन आदि के लिए लालायित नहीं था और अभी भी नहीं हूँ। फिर भी, इतना कह सकता हूँ कि भगवत्-कृपा का अनुभव किया हूँ।'' तदुपरान्त भाव से उत्तेजित होकर वे बिस्तर पर सो गये और सेवक को उन लोगों को कमरा से बाहर निकालने के लिए कहा। महाराज ने सेवक से कहा, ''बहुत कष्ट हो रहा है, मेरी पीठ सहला दो।'' ''क्या हुआ?'' ''वायु उर्ध्वगामी हो गयी है। अभी वार्तालाप मत करो।'' तदनन्तर धीरे-धीरे शान्त होकर वे सो गये। धन्य हैं श्रीमाँ की सन्तान ! धन्य हैं रामकृष्ण संघ के एक महान संन्यासी !

१९७७ ई. में वाराणसी में स्वामी धीरेशानन्दजी ने मुझे अपनी बहुमूल्य दैनन्दिनी दी, जिसमें बहुत से वरिष्ठ संन्यासियों की बातें और उपदेश उन्होंने लिपिबद्ध किया था। उसी दैनन्दिनी से सारदेशानन्दजी द्वारा कही गयी इन तीन बातों का उल्लेख कर रहा हूँ –

१. तपस्वी हरि महाराज : एक बार कनखल श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम से होकर पूजनीय हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) नंगे पाँव गंगा किनारे नांगल में तपस्या के लिए जा रहे हैं; साथ में कम्बल, सामान्य वस्त्र और एक पुस्तक की पोटली थी। वे स्वयं ही सब लेकर जा रहे हैं; स्वामी कल्याणानन्द उनके साथ-साथ जा रहे हैं। जगदीशपुर के नीचे तक जाकर विदाई के समय कल्याण महाराज द्वारा कुछ पैसा-कौड़ी देने की इच्छा करने पर हरि महाराज ने तीव्र आपत्ति की। किन्तु कल्याण महाराज ने छिपाकर एक सिक्का मोहर हरि महाराज के कमीज के पॉकेट में डाल दिया। विदाई लेकर कल्याण महाराज वापस आ गये। कुछ दूर जाने पर हरि महाराज ने पॉकेट में हाथ डालकर देखा तो एक सिक्का मोहर था। समझ गये कि यह कल्याण का कार्य है। वे पुनः उतने माइल मार्ग चलकर वापस आये और कहा, ''कल्याण ! यह तुम्हारा कार्य है। क्यों दिया? मैं साथ में पैसा-कौड़ी नहीं रखूँगा। एक ठाकुर के ऊपर निर्भर होकर रहूँगा।'' यह कहकर वे चले गये। जाने के पूर्व सिक्का मोहर वापस कर गये। मार्ग में नांगल के एक व्यक्ति से भेंट हुई। मना करने पर भी वह साधु-सेवा करने की इच्छा से पुस्तकों की पोटली लेकर चलने लगा। इस प्रकार हरि महाराज नांगल पहुँचे।

२. महाराज और नटराज नृत्य : दक्षिण के मन्दिरों में नटराज के नृत्य की मूर्ति देखकर महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) आश्चर्यचकित हो उठे। नटराज का चरण उठाकर नृत्य करने की जिस प्रकार की भंगिमा थी, ठाकुर भी नृत्य के समय उसी प्रकार चरण उठाते थे। अद्भुत सादृश का दर्शन करके महाराज मुग्ध हुए।

३. आसन पर साधु और बिल में साँप : विवर अर्थात् गर्त। साँप जब बिल में रहता है, तब उसका बल असीम होता है। उस समय निकट किसी के जाने पर उसकी और रक्षा नहीं। विषाक्त साँप फन उठाने से ही काटता है, फन में ही साँप की शक्ति होती है।

उसी प्रकार आसन ही साधु की शक्ति है। जितना वह अपने आसन पर रहेगा, उतना ही वह बलवान होगा। साधु प्रातः आठ के पूर्व अपना आसन छोड़कर घर से बाहर नहीं जायेगा और सन्ध्या के पूर्व ही भ्रमण समाप्त करके अपने आसन पर वापस आ जायेगा। तभी साधु का बल अटूट रहेगा। नहीं तो बाहर नाना प्रकार के प्रलोभनों की विपत्ति से स्वयं की रक्षा करना कठिन हो जायेगा। इसीलिए यह उक्ति प्रसिद्ध है – 'आसने साधु विवरे साँप।'

मठ-मिशन में तीन प्रकार के साधु देखे जाते हैं – कर्मी साधु, विद्वान साधु और तपस्वी साधु। स्वामी सारदेशानन्द जी के जीवन में ये तीनों गुण समग्र रूप से प्रकाशित हुये थे। वास्तव में कहा जाये, तो वे शान्ति-स्थल थे। कर्मक्लान्त साधु और भक्त उनके पास जाकर स्नेह, प्रेम तथा अनुप्रेरणा पाते थे। धन्य है ऐसा जीवन ! धन्य हैं श्रीमाँ की सन्तान !

(क्रमशः)

रामकृष्ण मठ-मिशन के परमाध्यक्ष परम पूज्य **स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज** ने १५ अगस्त, २०२१ को **रामकृष्ण मठ, बागबाजार, कोलकाता** स्थित माँ सारदा सेवार्थ चिकित्सालय एवं पैथोलॉजी के नये भवन का वर्चुअल माध्यम से उदघाटन किया।

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, मुख्य कार्यालय

१७ अगस्त, २०२१ को केन्द्रीय राज्य शिक्षा मन्त्री श्री **सुभाष सरकार** ने बेलूड़ मठ का परिदर्शन किया। युवाओं हेतु प्रेरक गतिविधियों में मुख्य कार्यालय द्वारा २२ अगस्त, २०२१ को एक ऑनलाइन ओरिएन्टेशन प्रोग्राम का आयोजन किया गया, जिसमें ५२ आश्रमों के प्रभारी और अन्य युवा-संयोजकों कुल ७९ साधुओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर ने जुलाई अगस्त, २०२१ में मुख्य परिसर और आकाबेड़ा में कुछ भवनों का लोकार्पण किया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची ने २१ जुलाई, २०२१ को कृषि और ग्रामीण विकास पर आधारित एक **'प्रबुद्ध ग्राम'** नामक हिन्दी-अंग्रेजी संयुक्त त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित की।

केरल के **राज्यपाल** माननीय **आरिफ मुहम्मद खान** ने ५ अगस्त, २०२१ को **रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली** का परिभ्रमण किया।

पश्चिम बंगाल की **मुख्यमंत्री** सम्माननीया **ममता बैनर्जी** ने ९ अगस्त, २०२१ को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, झाड़ग्राम** विद्यालय के १३ आदिवासी विद्यार्थियों को उनके द्वारा १०वीं एवं १२वीं में श्रेष्ठ प्रदर्शन के लिये उन्हें सम्मानित किया।

भारतीय स्वतन्त्रता दिवस १५ अगस्त के उपलक्ष्य पर, उत्तराखण्ड के **मुख्यमन्त्री** माननीय **श्री पुष्कर सिंह धामी** ने **रामकृष्ण मिशन आश्रम, देहरादून** के विवेकानन्द नेत्रालय को कोरोना महामारी में प्रदान की गयी चिकित्सकीय सेवाओं के लिए प्रशंसा पत्र प्रदान किया।

स्वतन्त्रता दिवस के अवसर पर आयोजित अन्य कार्यक्रमों में **रामकृष्ण मिशन, दिल्ली, रामकृष्ण मिशन, शिवनहली और रामकृष्ण मठ, तंजौर** आश्रमों को भी कोरोना महामारी में किये गये त्राणकार्यों हेतु स्थानीय सरकारी अधिकारियों द्वारा सम्मानित किया गया।

१७ अगस्त, २०२१ को केन्द्रीय राज्यमंत्री श्री **अर्जुन राम मेघवाल** ने **रामकृष्ण विवेकानन्द स्मृति मन्दिर, खेतड़ी** का परिदर्शन किया।

१९ अगस्त, २०२१ को **सूचना एवं प्रौद्योगिकी केन्द्रीय राज्यमंत्री श्री एल मुरूगन** एवं **स्वास्थ्य व परिवार कल्याण मंत्री,** तमिलनाडु सरकार **श्री एम. सुब्रमण्यन** ने **रामकृष्ण मठ, चेन्नई** के **विवेकानन्द हाउस** का परिदर्शन किया।

२० अगस्त, २०२१ को केन्द्रीय राज्यमंत्री महिला एवं बाल विकास तथा आयुध मंत्रालय, **श्री महेन्द्र मुंजापारा** ने **रामकृष्ण मिशन, लिम्बड़ी** का परिदर्शन किया।

२२ अगस्त, २०२१ **स्वामी निरंजनानन्द जी महाराज** के पावन जन्म दिवस पर अरुणाचल प्रदेश के **मुख्यमंत्री श्री प्रेमा खांडु** ने **रामकृष्ण मिशन होस्पीटल, इटानगर** के चिकित्सालय में नयी एमआरआई स्कैन मशीन का उद्घाटन किया। इसी पावन दिवस पर उन्होंने आश्रम परिसर में २०० विस्तर वाले चिकित्सा भवन की नींव भी रखी।

रामकृष्ण मिशन ब्वायज होम, राहड़ा, कोलकाता विद्यालय के बारहवीं कक्षा के छात्र ने राज्यस्तर पर आयोजित पश्चिम बंगाल संयुक्त प्रवेश परीक्षा २०२१ में प्रथम स्थान प्राप्त किया। **मुख्यमंत्री ममता बैनर्जी ने छात्र को स्वयं दूरभाष के माध्यम से** शुभकामनाएँ प्रदान कीं।

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया की कक्षा १०वीं के छात्र ने **सेन्टर फॉर मॉडलिंग द फ्यूचर, मास्को एशिया** द्वारा वैज्ञानिक कार्यों पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय ऑनलाइन प्रतियोगिता – 'होराइजन २१००' में भाग लिया तथा उसे **राकेट डिजाइनिंग** के लिए डिप्लोमा प्रदान किया गया।